मालवी-एक भाषा-शास्त्रीय अध्ययन

हमारे प्रकाशन—

रास माला

(गुजरात का इतिहास)

प्रथम भाग

[पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो खण्डों में]

मूल लेखक : अलैक्जैण्डर किन्लॉक फार्बस

अनुवादक : श्री गोपालनारायण बहुरा, एम० ए०

Dy-Director, Rajasthan Oriantal Reasearch Institute, Jodhpur.

प्राक्कथन : पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिन विजय

भूमिका : डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल

काशी विश्वविद्यालय

मूल्य पूर्वार्द्ध ५—०० उत्तरार्द्ध ६—००

विचार के प्रवाह

लेखक : डॉ० देवराज उपाध्याय

भूमिका : डॉ० विश्वनाथ प्रसाद आगरा विश्वविद्यालय

मूल्य ५—००

बचपन के दो दिन

लेखक : डॉ० देवराज उपाध्याय

भूमिका : श्री जयप्रकाश नारायण मूल्य ४—८०

भारत की खाद्य समस्या

लेखक : भूपाल मेहता, एम. ए. एम. एस. सी.

मूल्य ०—४० न.पै.

मंगल ग्रन्थमाला ग्रन्थ संख्या—३

मालवी–एक भाषा–शास्त्रीय अध्ययन

HISTORICAL, COMPARATIVE & DESCRIPTIVE
STUDY OF

MALVI--DIALECT

लेखक
डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय

भूमिका
पद्म भूषण पं० सूर्यनारायण व्यास

मंगल-प्रकाशन
गोविन्द राजियों का रास्ता,
जयपुर

मूल्य
तीन रुपये (३-००)

प्रकाशक
उमरावसिंह मंगल
संचालक
मंगल प्रकाशन
गोविन्द राजियों का रास्ता
जयपुर।

संस्करण
प्रथम संस्करण जौलाई, १९६०

●

मुद्रक
सहकारी आर्ट प्रिंटर्स
जयपुर।

अनुक्रम

किंचित् कथनीयम्

आज हम जिसे मालवी भाषा के नाम से ज्ञापित करते हैं, वह मालव प्रदेश में प्रचलित भाषा है। मालवी भाषा के उद्भवविकास और इतिहास को समझने के पूर्व हमें इस प्रदेश के इतिहास की ओर ध्यान देना आवश्यक होगा। मालव अथवा अवन्ती जनपद अत्यन्त पुरातन इतिहास रखता है। उसकी संस्कृति का सम्बन्ध वैदिक, रामायण, और महाभारत-काल से सहज ही जुड़ता है; चाहे उसे अवन्ती जनपद के रूप में समझा जाता हो, या मालव नाम से ! पिछले इतिवृत्तों में अवश्य ही यह भ्रान्ति उत्पन्न की हो कि अवन्ती और मालव में भेद रहा है, परन्तु प्रथम शताब्दी के वात्स्यायन ने स्पष्ट ही अवन्ती-देशोद्भव को 'मालव्य' कहकर प्रमाणित किया है। इन दोनों नामों में कोई अन्तर नहीं रहा है। महाभारत के समय जिन विन्द-अनुविन्द की सेना और अश्वत्थामा-गजेन्द्र ने कौरवों के साथ रहकर पाण्डवों के साथ संघर्ष किया, उनको महाभारतकार ने 'मालवेन्द्र' ही कहा है। इसके पूर्व भी महिष्मती के हैहयों और भार्गव-परशुराम में संघर्ष हुआ, वे इसी प्रदेश में वर्चस्व रखते थे। महिष्मती के भूगर्भ-शोधन से यह प्रमाणित हो गया है कि इस भूभाग पर पचास हजार वर्ष पूर्व की संस्कृति के अवशेष विद्यमान हैं। जहां नर्मदा-उपत्यका की विशिष्ट संस्कृति उपलब्ध है, ऐसी स्थिति में यह स्वीकार करने को बाध्य होना पड़ता है कि हजारों वर्ष पूर्व जिस भूभाग पर जनावास रहा हो; उनकी अपनी विशिष्ट संस्कृति रही हो; उनकी अपनी भाषा अवश्य रहना चाहिए। प्रश्न यह है कि वह भाषा कौन-सी रही होगी ? यह इसी प्रदेश के लिए नहीं, उन सभी प्रदेशों के लिए हैं, जिनकी इस महान् देश में अवस्थिति रही है। जिनका पुरातन इतिहास भी है। हमारे समक्ष वैदिक साहित्य के अतिरिक्त अलग-अलग प्रदेशों के भाषा-वैभिन्य

के स्वतन्त्र एवं पृथक प्रमाण उपलब्ध नहीं है, तथापि पुरातन साहित्य में सर्वप्रथम जिन भाषाओं का स्पष्ट उल्लेख मिलता है, उनसे उन भाषाओं की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार करना पड़ता है। उन 'सप्त-भाषाओं' में इस प्रदेश—जिसका नाम ही अवन्ती प्रदेश रहा है,—की भाषा को 'आवन्ती' कहा गया है। आवन्ती के उद्‌भव-विकास के स्रोतों को खोजने के लिए हमारी वर्तमान पीढ़ी के पास पर्याप्त साधनों का अभाव है, इस कारण उसके पूर्व-वृत्त को जानना सम्भव नहीं होता। अवश्य ही आवन्ती भाषा के साहित्य का भी न जाने किस युग में संहार हो चुका है।

इस प्रदेश का इतिहास अनेक संघर्षों और उत्थान-पतनों की परम्पराओं से भरा हुआ है। तथापि कुछ पुरातन प्रामाणिक साहित्य में आवन्ती के कतिपय उद्धरण उपलब्ध होते हैं। जिनका अपभ्रंश काव्यत्रयी, राजशेखर, धनपाल आदि ने कहीं-कहीं उल्लेख किये हैं और भरत मुनि के नाट्यशास्त्र, वराह मिहिर के ग्रन्थों में चर्चा हुई है। इससे यह प्रमाणित होता है कि अवन्ती भाषा को स्वतन्त्र महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। नाटकों के लिए इसी महत्व के कारण एक 'रीति' के रूप में आवन्ती की प्रतिष्ठा भी की गई है। इसलिये यह आशंका करने का कोई कारण नहीं रहता कि इस प्रदेश की भाषा आवन्ती प्रौढ़, प्रांजल और समृद्ध न रही होगी। उसी पूर्वकालीन प्रदेश की भाषा ही विकसित होकर अपनी परम्परा को आज तक अक्षुण्ण बनाये हुए है।

प्राकृत-भाषा के पूर्वेतिहासविदों का यह मत है कि 'प्राकृत्यवन्तिजा भाषा' अर्थात् प्राकृत भाषा अवन्ती से उत्पन्न है। मैं इसका कोई कारण नहीं देखता कि इसमें सन्देह किया जाय। आज हमारे सामने यह स्थिति स्पष्ट है कि भास—कालिदास या अन्य तत्कालीन लेखकों द्वारा प्रयुक्त प्राकृत, जो इस प्रदेश में प्रचलित एवं व्यवहृत हुई है, वह मगध एवं इतर प्रदेशों से भिन्न अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है। भाषा-वैज्ञानिक वर्ग मगध की प्राकृत और जैन-प्राकृत, महाराष्ट्री प्राकृत आदि का स्वतन्त्र वर्ग

मानते हैं और भास—कालिदास के काल की प्राकृत से उसके काल-निर्धारण की सहायता लेते हैं। यह प्राकृत आवन्ती के विकसित रूप में ही हम पाते हैं, जो उसकी परम्परा को साथ लिये है। यही प्राकृत धीरे-धीरे विकास पाती हुई परमारों के समय तक पहुंचती है, जिसमें भोज और मुंज की रचनाएं प्राप्त होती हैं। यदि हम इसी प्रकार आज की प्रचलित मालवी भाषा के मूल को सावधानी से देखें तो आवन्ती भाषा के प्राप्त कतिपय उदाहरणों में हमें सहज मौलिक रूप दिखाई पड़ता है और क्रमिक विकास के अनुसार वह मुंज-भोज की प्राकृत-कविताओं में भी निहित है। छठी शती से लेकर नवीं शती पर्यन्त इस प्रदेश से निरन्तर प्रयाण कर जाने वाले घुमन्तु जिप्सियों की टोलियां, जो शताब्दियों से समुद्र-पार, विदेशों के विभिन्न भू-भागों में जाकर बसी हैं, उनकी भाषा में भी इसी मालवी की मौलिकता स्पष्ट प्रतीत होती है और परमार-काल के अनेक परमार-वीरों के संघर्षमय समय में मालव प्रदेश त्यागकर सुदूर पहाड़ी प्रदेशों में बस जाने, हिमवत्खण्ड में वर्चस्व जमा लेने पर भी उनकी भाषा में इस प्रदेश की भाषा का स्पष्ट दर्शन किया जा सकता है।

बिहार के भोजपुर क्षेत्र में परमार लोग आज भी अपने को 'उज्जैनी परमार' के नाम से ही ज्ञापित करते हैं। नेपाल में बसे हुए, कुछ शताब्दियों पूर्व प्रवास करने वाले मालवीय, जो अपने को मालव, अवन्ती का निवासी ही मानते हैं, उनकी भाषा में भी मालवी का पर्याप्त स्वरूप विद्यमान है। महाभारत, रामायण, पाणिनी, पातंजल महाभाष्य, भास, कालिदास, शूद्रक, राजतरंगिणी तथा सरित्सागर, अनर्घराघव और अनेक जैन-ग्रन्थकार मालव का मध्यवर्ती स्थान भरत और वात्स्यायन की तरह ही अवन्ती स्वीकार करते हैं। उस अवन्ती जनपद की आवन्ती भाषा को मालवी का मूल मानना केवल कल्पना-विलास ही नहीं है।

अवश्य ही इस दिशा में गम्भीर अध्ययन-संशोधन की आवश्यकता है। मुझे आशा है, जागरूक मालव प्रदेश के बुद्धिजीवी इस दिशा में प्रवृत्ति और प्रगति कर तथ्यान्वेषण करेंगे।

डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय ने इस ओर शुभारम्भ किया है। उनकी यह रचना सर्वप्रथम उन्हें एक चिन्तक एवं अन्वेषक के रूप में प्रस्तुत करती है। श्री उपाध्याय ने मालवी भाषा के विषय में व्यवस्थित और तुलनात्मक अध्ययन कर सर्वथा नवीन उपक्रम किया है। मालवी के उद्‌भव–विकास, इतिहास, भेदोपभेद पर जिस प्रकार क्रम से एवं सूत्रबद्ध छान-बीन की है, वह वास्तव में इस भाषा के अध्येताओं के लिये मार्ग-दर्शक सिद्ध होगी। इस दिशा में यह सर्वथा ही मौलिक एवं प्रथम कृति है। खोज करने वालो के लिये इस ग्रन्थ द्वारा दिशा-दर्शन प्राप्त होगा। अवश्य ही मालवी के उद्‌भव-विकास के मौलिक स्वरूप को समझने के लिये विभिन्न पुरातन भाषाओं और उनके भेदों के स्रोतों का संशोधन करना होगा। पालि, प्राकृत, अपभ्रन्श, जैन ग्रन्थों और शिला-ताम्रपटों का पर्यवेक्षण भी करना होगा। यह अत्यन्त परिश्रम-साध्य विषय है। शासन को इस संशोधनात्मक प्रवृत्ति को प्रेरित और प्रोत्साहित करना होगा। इसके पूर्व निस्सन्देह डॉ० उपाध्याय की यह कृति एक महत्वपूर्ण माध्यम सिद्ध होगी। इस पुस्तक के पूर्व अभी तक कोई ऐसी व्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत करने वाली प्रामाणिक कृति प्रकाश में नहीं आई है। इसमें मतभेद का अवसर रह सकता है, किंतु यह मतभेद भी इस दिशा में संशोधन के लिये नव–तथ्य प्रकाशन–प्रेरक और प्रोत्साहक ही सिद्ध होगा।

मैं डॉ० उपाध्याय की इस रचना का हार्दिक स्वागत करता हूं और उनके साधनागत प्रयास को प्रशंसनीय मानता हूं। मुझे विश्वास है, वे इस विषय में आगे चलकर अधिक विस्तार से भाषा-शास्त्रीय अध्ययन को गति देंगे। प्रस्तुत पुस्तक का इस प्रदेश और भाषा-विज्ञान-प्रेमियों में सर्वत्र स्वागत होगा।

भारती भवन
उज्जयिनी।

सूर्यनारायण व्यास

लेखक की ओर से

अपने ज्ञान और अज्ञान की सीमा से पूर्णतः परिचित होते हुए भी इस पुस्तक को प्रस्तुत करने का साहस इसलिये कर रहा हूं कि अभी तक मालवी का भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से कोई विस्तृत अध्ययन सामने नहीं आया। मालवी के उद्गम और विकास के सम्बन्ध में विद्वानों की भिन्न-भिन्न धारणाएँ हो सकती हैं, किन्तु अपभ्रंश साहित्य की जो कुछ भी सामग्री हमें प्राप्त होती हैं, उसमें मालवी का मूल-रूप अवश्य मिल जाता है। मालवी के प्राचीन और अर्वाचीन स्वरूप की स्थिति तो स्पष्ट है, किन्तु कालान्तर में हुए उसके क्रमिक विकास की परतों का लिखित साहित्य के अभाव में उद्घाटन करना अभी सम्भव नहीं है। वैसे मालवी में अब साहित्य का सृजन होने लगा है और मालवी के विभिन्न लेखकों की रचनाएँ, उनके क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा का प्रतिनिधित्व भी करती हैं, फिर भी समग्र रूप से मालवी के विस्तीर्ण भाग का भाषा की दृष्टि से सर्वे करना आवश्यक है, और यह एक ऐसा कार्य है, जो किसी व्यक्ति के सीमित साधनों में सम्पन्न नहीं हो सकता।

लोकगीतों का संकलन करते समय मैंने मालवी भाषा के सम्बन्ध में कुछ सामग्री को लिपिबद्ध किया था। उसी के आधार पर यह पुस्तक लिखी गई है। भाषा-सम्बन्धी विवेचन में मालवी के कुछ लेखकों की रचनाओं को भी आधार माना है। यह एक प्रारम्भिक प्रयास मात्र है, और इसको अध्ययन का एक आंशिक स्वरूप ही कहा जावेगा। इस दिशा में विस्तृत कार्य करने के लिये व्यापक क्षेत्र खुला हुआ है। मनीषी डॉ० ग्रियर्सन की साधना हमारे लिए प्रेरक हो सकती है। इस पुस्तक में प्रचलित भाषा वैज्ञानिक पद्धति से किये गये ऐतिहासिक, तुलनात्मक एवं विवर-

णात्मक अध्ययन की संक्षिप्त रूप-रेखा मात्र प्रस्तुत की गई है। आशा है, मालवी के प्रति अनुरक्ति रखने वाले अनुसन्धान-कर्ता एवं जिज्ञासु व्यक्ति भविष्य में इस कार्य को अधिकाधिक गति प्रदान करेंगे।

अन्त में मालव और मालवी के गौरव–स्तम्भ, पद्म–भूषण पं० सूर्यनारायणजी व्यास एवं मालवी के क्षेत्र में कार्य करने वाले सभी साथियों का हृदय से आभारी हूँ, जिनकी प्रेरणा और सहयोग का सम्बल मुझे मिलता रहा है। प्रूफ–संशोधन के लिये श्रीबसन्तीलाल 'बम' भी धन्यवाद के पात्र हैं। **"मंगल प्रकाशन"** के संचालक भाई उमरावसिंह जी मंगल का भी कृतज्ञ हूँ, जिनके स्नेह–सौजन्य एवं उत्साह से ही प्रस्तुत पुस्तक प्रकाश में आ सकी है।

हिन्दी विभाग,
माधव कालेज,
विक्रम विश्वविद्यालय,

चिन्तामणि उपाध्याय

प्रथम अध्याय

(मालवी का उद्भव और विकास)

मालवी–भाषागत नामकरण ।

मालवी की उत्पत्ति एवं प्राचीनता ।

पालि एवं अवन्ती प्रदेश की भाषा ।

अवन्तिजा : अवन्ती प्राकृत एवं पैशाची ।

अपभ्रंश एवं मालवी ।

मालवी के अंकुर ।

मालवी–भाषागत नामकरण

सामान्यतः प्रदेश विशेष एवं जातियों के नाम पर भाषाओं का नामकरण करने की प्रवृत्ति अधिक व्यापक है। प्राचीन काल से ही जनपदों के नाम पर भाषा एवं साहित्य की विभिन्न शैलियों, वेष-विन्यास, विलास-विन्यास एवं वचन-विन्यास को क्रमशः प्रवृत्ति, वृत्ति और रीति की संज्ञा दी गई है।[1] नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत मुनि ने चार प्रकार की प्रवृत्तियों का उल्लेख करते समय दाक्षिणात्य, पांचाली, औड्रमागधी के साथ अवन्ती प्रदेश की प्रवृत्ति को 'आवन्ती' कहा है।[2] इसी तरह भाषा का नामकरण करते समय अवन्ती-क्षेत्र की भाषा को 'अवन्तिजा' संज्ञा देकर उसे सप्त-भाषा के वर्ग में स्थान दिया है[3]। वर्तमान मालव-प्रदेश के नाभिस्थल उज्जैन के निकट का विस्तीर्ण क्षेत्र प्राचीन युग में अवन्ती जनपद के नाम से प्रसिद्ध रहा है। अतः उक्त परम्परा के आधार पर मालव प्रदेश की साधारण जनता द्वारा बोली जाने वाली भाषा को प्रदेश के नाम पर 'मालवी' नाम देना सार्थक है।

मालवी की उत्पत्ति एवं प्राचीनता

लिखित साहित्य के समुचित प्रमाणों के अभाव में किसी भी भाषा

---

१. वेषविन्यास क्रमो प्रवृत्तिः विलास-विन्यास क्रमो वृत्तिः वचन-विन्यास-क्रमो रीतिः— राजशेखर, काव्य मीमांसा, अध्याय ६

२. अवन्ती दाक्षिणात्या च पांचाली औड्रमागधी
नाट्यशास्त्र, अध्याय १३, श्लोक ३२ (निर्णय सागर प्रेस १९४३ई.)

३. मागध्यवन्तिजा प्राच्या शूरसेन्यर्धमागधी।
बाल्हीकी दाक्षिणात्या च सप्त-भाषा प्रकीर्तिताः॥ (वही, १७।४)

के उद्गम एवं विकास के सम्बन्ध में मान्यताएँ निर्धारित करना अनेक भ्रान्तियों को जन्म दे सकता है। आधुनिक भारत की विभिन्न भाषा और बोलियों के सम्बन्ध में प्रायः यही धारणा बनाली गई है कि प्राचीन अथवा मध्यकालीन भारत की दो-चार भाषाओं के विपाटन से वर्तमान भाषाओं का विकास हुआ है। इसी धारणा को लेकर अधिकांश विद्वानों द्वारा भाषा-विषयक अध्ययन किया गया है। अतः मालवी का अध्ययन करते समय भी संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश की उपलब्ध सामग्री का उपयोग कर लेना आवश्यक है। मालव प्रदेश की भाषा के सम्बन्ध में प्राचीनतम उल्लेख केवल भरत के नाट्य-शास्त्र में ही मिलता है। यदि हम मालवी के आदि-स्रोत की उसमें खोज करते हैं तो वह प्राचीनता का मोह ही कहा जायेगा। पं० सूर्यनारायण व्यास मालवी को 'अवन्तिजा' से निसृत मानते हैं—"जिस अवन्ति भाषा से मालवी ने जनम लियो और जिससे प्राकृत, अपभ्रंश, महाराष्ट्रीय आदि भाषा पनपी, फैली वा भाषाज् आज मालवी का नाम से चली आवे हैं।" [1] पण्डितजी के उक्त कथन को प्रामाणिकता की कसौटी पर परखने के लिए विशेष छानबीन की आवश्यकता होगी और सम्भवतः अधिकांश विद्वानों के समक्ष इस मत को स्वीकार करने में अनेक उलझनें भी उत्पन्न हो सकती हैं।

अवन्तिजा निश्चित ही उस युग की जन-भाषा रही होगी, क्योंकि संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं के साथ ही देश-भाषा के विकल्पन को ग्रहण करने के लिए भरत मुनि ने विशेष आग्रह भी किया है। किन्तु 'अवन्तिजा' भाषा के स्वरूप, गुण और लक्षण आदि के सम्बन्ध में नाट्य-शास्त्र मौन है। केवल उसे धूर्तों द्वारा प्रयुक्त होने योग्य बताया है।

प्राच्या विदूषकादीनां धूर्तानामप्यवन्तिजा।[2]

पं० सूर्यनारायण व्यास ने अवन्तिजा के साथ धूर्त शब्द को संलग्न

---

१. 'मालवी कविताएँ' की भूमिका से उद्धृत।

२. वही, (नाट्यशास्त्र) १७।५१

देखकर भाषा और प्रदेश की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए धूर्त शब्द की विशेष व्याख्या कर डाली। उन्होंने धूर्त शब्द का अर्थ 'डिप्लोमेट' माना है। किन्तु भाषा की प्रतिष्ठा या अप्रतिष्ठा का यहाँ प्रश्न ही नहीं उठता। श्लोक के उक्त अंश का पाठान्तर भी प्राप्त है—**योज्या भाषा अवन्तिजा**[1]। अवन्तिजा को धूर्तों की भाषा घोषित करने वाला अंश किसी दूषित मनोवृत्ति के कारण जोड़ा गया ज्ञात होता है। इसी तरह मालवी की प्राचीनता को सिद्ध करने के लिए डॉ० परमार ने भी मालवी की जननी अवन्तिजा को माना है।[2] किन्तु राजशेखर द्वारा काव्य-मीमांसा में प्रस्तुत किये गये नवीन प्रश्न का वे समाधान नहीं कर सके। अवन्ती, परियात्र एवं दशपुर (आधुनिक मन्दसौर) के निवासियों की भाषा को राजशेखर ने 'भूतभाषा' कहा है।[3] किन्तु भूत के साथ पिशाच का सम्बन्ध जोड़कर पैशाची भाषा को अनार्य भाषा करार देना उचित नहीं है।[4] भूत-भाषा पैशाची का ही दूसरा नाम है। फिर भरत मुनि के युग से लेकर राजशेखर के समय तक लगभग ७०० वर्षों के दीर्घकालीन आवरण को चीरकर अवन्तिजा का वही रूप स्थिर रहा होगा, यह विचारणीय है।

पालि एवं अवन्ती प्रदेश की भाषा

जन-भाषाओं के आधार पर साहित्यिक भाषाओं का जन्म होता है अर्थात् प्रत्येक साहित्यिक भाषा का आधार कोई न कोई जन-भाषा अवश्य होती है। जन-भाषा की अनेक उप-धाराएँ साहित्य की भाषा को परिपुष्ट करती रहती हैं। जहाँ तक पालि और संस्कृत के जन–भाषागत स्वरूप का सम्बन्ध है, दोनों ही वैदिक लोक–भाषा से उद्भूत हुई हैं। प्राकृतों का

१. वही, (नाट्यशास्त्र) पाद टिप्पणी १७।५१

२. 'मालवी और उसका साहित्य' पृष्ठ २

३. आवन्त्याः पारियात्राः सह दशपुरजैर्भूतभाषा भजन्ते। काव्य मीमांसा

४. मालवी और उसका साहित्य, पृष्ठ २०–२१

विकास तो पालि के बाद का है। यह भी कहा जा सकता है कि पालि प्राकृत की प्रथम अवस्था का ही नाम है।[1] भारतीय आर्य भाषाओं के मध्यकालीन रूप को जिसका समय लगभग ५०० ई० पू० से लेकर १००० ई० तक माना जाता है, विकास अथवा परिवर्तन की दृष्टि से तीन वर्गों में विभाजित किया गया है:—

१. **पालि** :—५०० पूर्वेसा से ईसा की प्रथम शताब्दि के आरम्भ तक।
(**पूर्वकाल की प्राकृत**)

२. **प्राकृत** :—६०० ई० तक। इन भाषाओं में प्रादेशिक विशिष्टताओं के आधार पर रूप-वैविध्य प्राप्त होता है।
(**मध्यकाल की प्राकृत**)

३. **अपभ्रंश** :—१००० ई० तक। प्राकृतों से उद्भूत समान नामधारिणी भाषाओं को अपभ्रंश के नाम से पुकारा गया है।
(**उत्तरकाल की प्राकृत**)

पालि भाषा के सम्बन्ध में विद्वानों के अनेक मत हैं। पालि किस प्रदेश की भाषा रही होगी! इस प्रश्न पर भी मत-वैभिन्य है। डा. ओडनबर्ग ने उसे कलिंग की भाषा माना है[2] तो वेस्टरगार्ड तथा ई० कोह्न ने पालि को उज्जैन प्रदेश की बोली माना है[3]। इस मत की पुष्टि दो बातों से की गई है। एक तो अशोक के गिरनार वाले अभिलेख की भाषा पालि से बहुत कुछ समानता रखती है। दूसरे राजकुमार महेन्द्र का जन्म उज्जैन में हुआ था और यहीं उनका बाल्यकाल भी बीता। अत: महेन्द्र की मातृ-भाषा उज्जैन की बोली ही थी, जिसमें उसने बौद्धधर्म का

१. **भरतसिंह उपाध्याय : पाली साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ३०-३१**
२. **विनय पिटक : ओडन-बर्ग द्वारा सम्पादित भाग १ भूमिका पृष्ठ १-५**
३. **बुद्धिस्टिक स्टडीज : डा. लाहा द्वारा सम्पादित : पृष्ठ २२२-२३**

प्रचार किया होगा। डॉ० उदयनारायण तिवारी भी उक्त तथ्य को युक्तियुक्त मानते है।[1] प्रो० रायस डेविड्स यद्यपि पालि को कोशल प्रदेश की भाषा मानते हैं, परन्तु उन्होंने प्रथम सहस्राब्दि ईस्वी के मध्य तक की भाषाओं की जो सूची दी है, उसमें क्रमांक ६ के सम्बन्ध में यह प्रकट किया गया है कि कोशल की राजधानी सवत्थी (श्रावस्ती) की स्थानीय बोली पर आधारित परस्पर बातचीत की एक उप-भाषा थी, जिसका राज्य के समस्त अधिकारी और व्यापारियों में प्रचलन था। इसका समस्त कोशल राज्य में ही नहीं वरन् दिल्ली से पटना तक, उत्तर में सवत्थी, दक्षिण में अवन्ती तक प्रचार था। इसी प्रकार क्रमांक ६ पर आधारित उच्च भारतीय पालि का साहित्यिक रूप भी था, जो अवन्ती में बोले जाने वाले रूप में व्यवहृत होता था।[2] उक्त मतों के आधार पर श्री नरुला ने यह मान्यता स्थापित की :—

" सम्भवत: पालि मथुरा और उज्जैन की बोलियों के मिश्रण से बनी होगी जिसमें मागधी बोलियों के अनेक शब्दों का समावेश हो गया है। बुद्धकाल में यमुना तट पर स्थित मधुरा (मथुरा) के राजा को अवन्तिपुत्त कहा गया है और ऐसा प्रतीत होता है कि उज्जैन के राज्यवंश की एक शाखा ने शूरसेन पर अपना राज्य स्थापित कर लिया था, जिसकी राजधानी मथुरा थी और उस राज्य की राज-भाषा के रूप में यह भाषा उदित हुई होगी"[3] ।

बौद्धधर्म के प्रचार का प्रमुख माध्यम होने के कारण पालि अनेक बोलचाल की भाषाओं के संश्लेषण से अस्तित्व में आई थी, अतः यह मान लेना असंगत नहीं होगा कि उसमें अवन्ती प्रदेश अर्थात् मालव की तत्कालीन भाषा का अंश भी अवश्य रहा होगा। साहित्यिक शैलियों में विकसित पालि, प्राकृत आदि भाषाओं में उन

---

१. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास : पृष्ठ ६३
२. रायस डेविड्स : बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ ८० : सुशील गुप्त प्रकाशन
३. हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास, पृष्ठ ५०–५१

जीवित बोलियों के अस्तित्व को खोज निकालना कठिन अवश्य है, किन्तु यथालब्ध प्रमाणों के आधार पर उनकी किंचित् स्थिति का आभास हमें अवश्य मिल सकता है। बौद्धकालीन एवं अशोक के समय की उज्जैनी भाषा अथवा बोली के सम्बन्ध में ऊपर विवेचन किया जा चुका है। वर्तमान मालवी की परम्परा को भरत मुनि से पूर्व तक ले जाया जा सकता है। हमें पालि में कुछ ऐसे शब्दों का रूप प्राप्त होता है, जो आज भी मालवी, राजस्थानी आदि में प्रचलित है।

'मोर'—हिन्दी की अनेक बोलियों में प्रचलित मोर शब्द (मयूर) का अशोक के शिलालेखों में पाया जाना जन-भाषा की प्राचीन, सजीव परम्परा के उद्घाटन में विशेष महत्व रखता है।[1]

पालि	संस्कृत	मालवी
३७. अग्गि	अग्नि	अग्गि, आगि
३७. पियु	प्रिय	पिय, पियु
३७ रुक्खो	रुक्ष	रुखो
३८. ओट्ठ	ओष्ठ	ओट्ठ, होंठ
४०. रुक्ख	वृक्ष	रुंखड़ो, रुंख
४१. खीर	क्षीर	खीर
४९. लोण	लवण	लोण, लूण
५६. फरसु	परशु	फरसो
६३. झाम	क्षाम	झाम
६९. उण्हा	उष्णा	उण्हालो[2]

अशोक के गिरनार वाले लेख की, पालि की तरह मालवी में भी

---

१. आर. के. मुकर्जी—अशोक, पृष्ठ २४५ : राजकमल प्रकाशन :

२. पालि शब्दों के प्रारम्भ में दी गई संख्या पृष्ठों की सूचक है। 'पालि साहित्य का इतिहास' पुस्तक के पृष्ठों में उक्त शब्दों का उल्लेख है।

प्रमुख विशेषता यह है कि 'श' एवम् 'ष' के स्थान पर 'स' का प्रयोग हुआ है।

अवन्तिजा (अवन्ती प्राकृत एवं पैशाची)

जिस तरह संस्कृत शब्द मे शिष्ट समाज की भाषा का भाव ध्वनित होता है, प्राकृत को साधारण जन की भाषा कहा गया है। भरत मुनि ने जिन सात प्राकृतों का उल्लेख किया है, सम्भवतः वे बोलियां मात्र थीं। साहित्यिक ग्रन्थों में प्रयुक्त होने के कारण उनका स्वरूप भी अवरुद्ध हो गया था और जन-भाषाओं से मानों उनका सम्बन्ध टूटता गया। मध्य-काल की प्राकृतों का समय प्रथम शताब्दि ईस्वी में प्रारम्भ होता है। वैयाकरणों ने इन भाषाओं पर कुछ विचार भी किया है। वररुचि ने प्राकृत के केवल चार ही भेद माने, महाराष्ट्री, पैशाची, मागधी और शौरसेनी। भरत को छोड़कर 'अवन्तिजा' का उल्लेख किसी भी लेखक ने नहीं किया और संस्कृत के नाटकों में, जो प्राकृत के विभिन्न रूपों का प्रयोग मिलता है वह भी कृत्रिम ही लगता है। मृच्छकटिक नाटक में विदूषक प्राच्य भाषा का प्रयोग करता है तो वीरक 'आवन्ती' का। किन्तु इस संदर्भ मे 'अवन्ती-प्राकृत' का स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाता। स्टेन कोनउ ने पालि और पैशाची के सादृश्य की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए पैशाची प्राकृत को उज्जैन की बोली बतलाया है[1]। इस मत मे निःसंदेह भाषा शास्त्रियों के सम्मुख एक नवीन समस्या खड़ी होती है कि पैशाची का आदि-गृह उज्जैन को कैसे माना जावे। यहीं राजशेखर की काव्य-मीमांसा का यह कथन भी विचारणीय है कि अवन्ती (मध्य मालव), परियात्र (पश्चिमी विन्ध्यप्रदेश), और दशपुर (उत्तर मालव) के लोग भूत–भाषा का प्रयोग करते थे[2]। भूत-भाषा का यह प्रसंग डा० श्याम परमार के लिये एक नवीन प्रश्न है।[3]

---

१. विण्टर निटस्ज—इन्डियन लिट्रेचर, भाग २ पृष्ठ ६०४
२. काव्य-मीमांसा, अध्याय १०
३. मालवी और उसका साहित्य, पृष्ठ २०

किन्तु भूत-भाषा को ही पैशाची कहा गया है। इसी भाषा में गुणाढ्य ने बृहद्-कथा लिखी थी। प्रश्न तो यह उठता है कि राजशेखर ने अवन्ती प्रवृत्ति के प्रचार व प्रसार का जहाँ उल्लेख किया है[1] वहां भाषा के सम्बन्ध में इस प्रदेश की भाषा को 'भूत-भाषा' ही क्यों कहा ? यदि भूत-भाषा को हम पैशाची के रूप में स्वीकार न भी करें तो भूत का सीधा-सादा अर्थ 'बीता हुआ युग' मानकर यह नहीं कह सकते कि उक्त प्रदेश के लोग अतीत की-परम्परा-प्राप्त भाषा का ही प्रयोग करते थे ? किन्तु भूत-भाषा की कारक जनभाषा को ही मानना चाहिए। अतः भूत-भाषा का अर्थ जन-साधारण की भाषा के रूप में लिया जा सकता है। राजशेखर द्वारा वर्णित भूत-भाषा एवं प्रचलित मालवी में एक गुण समान रूप से विद्यमान है। मालवी की सरलता एवं मिठास तो सर्व-विदित ही है। राजशेखर ने भूत-भाषा की विशेषता प्रकट करते हुए, उसे भी सरस कहा है[2]।

अपभ्रंश एवं मालवी

अपभ्रंश से पहिले प्राकृत को देशी कहने की प्रथा प्रचलित थी [3] और प्राकृत से पूर्व पालि के लिये भी इसी संज्ञा का प्रयोग किया जाता था। वैसे भाषा-विशेष के अर्थ में अपभ्रंश का प्रयोग ईसा की छठी शताब्दि के बाद ही मिलता है, किन्तु प्राचीन ग्रन्थों में जहाँ कहीं भी अपभ्रंश का उल्लेख मिलता है, वहाँ जनसाधारण की असंस्कृत एवं भ्रष्ट भाषा के रूप में ही उसको प्रस्तुत किया गया है। संस्कृत-शब्दों के अनेक अपभ्रष्ट शब्दों

---

१. ततः सोवन्तीन् प्रत्युच्चचाल यत्रावन्ती वैदिश सुराष्ट्र मालवार्बुद भृगु कच्छादयो जनपदाः— काव्य मीमांसा, अध्याय ३

२. सरस रचनम् भूत वचनम्—बाल रामायण, अंक १ श्लोक ४

३. पालित्तएए रइया वित्थरओ तह य देसिवयणे हिं—

पाहुड़ दोहा की भूमिका से उद्धृत

का उल्लेख पतंजलि ने भी किया है[1] । भरत ने समान शब्द के अतिरिक्त जिस विभ्रष्ट शब्द का प्रयोग किया है उसका तात्पर्य भी अपभ्रंश से है [2] । वैयाकरणों ने संस्कृत से इतर भाषा के लिये तो प्राकृत शब्द का प्रयोग किया किन्तु संस्कृत से इतर शब्दों के लिये अपभ्रंश का। संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों के अतिरिक्त देशी शब्दों एवं संस्कृतैतर बोलियों के शब्दों के प्राचुर्य से अपभ्रंश का विकास हुआ और उसमें भी साहित्य की रचना होने लगी। जनता की बोली अथवा देशी भाषा में साहित्य रचना करने में साहित्यकारों ने गौरव का अनुभव किया। अपभ्रंश के दो प्रमुख कवि पुष्पदंत एवम् स्वयम्भू ने इसका स्पष्ट संकेत दिया है[3] । इससे स्पष्ट होता है कि प्रत्येक युग में साहित्यासीन अथवा शिष्ट भाषा के समानान्तर कोई न कोई देशी भाषा अवश्य रहती आई है। साहित्यकार अपने विचार साधारण जनता तक पहुंचाने के लिये उसी देशी भाषा का प्रयोग कर उसका परिमार्जन कर देते थे। छन्दस् की वैदिक भाषा ने तत्कालीन देशी भाषा से संस्कृत का रूप ग्रहण किया। फिर संस्कृत ही समय-समय पर देशी भाषा के सहयोग से प्राकृत में ढली। अवसर आने पर प्राकृत को भी अपनी आन्तरिक रूढ़ि दूर करने के लिये लोकभाषा की सहायता लेनी पड़ी। फलतः भारतीय आर्य भाषा की अपभ्रंश अवस्था उत्पन्न हुई, जिसने आगे चलकर 'गुजराती', 'राजस्थानी', 'पंजाबी', 'ब्रज', 'अवधी' आदि

---

१. एकैकास्यहि शब्दास्य बहवोऽपभ्रंशाः तद्यथा गौरित्यस्य शब्दस्य गावोगौणी गोता गोपोतलिका इत्येवमादयोऽपभ्रंशाः—

महाभाष्यम् किलहार्न संस्करण. भाग १ पृष्ठ ६

२. समान शब्द विभ्रष्ट देशीगतयथापिच। नाट्यशास्त्र १०।३,

३. –णउ हउ होमि वियक्खणु ण मुणमि लक्खणु छन्दु देसि ण वियाणमि महापुराण १।८

–देसी भाषा उभय तडुज्जलं। कवि दुक्कर घणसद्द सिलायल रामायण १

आधुनिक देशी भाषाओं को जन्म दिया [१] । तात्पर्य यह है कि अपभ्रंश का आविर्भाव नये सिरे से नहीं हुआ, बल्कि पूर्ववर्ती प्राकृतों और देशी भाषाओं के योग से उसकी अवस्था विकसित हुई । विकास के इन्हीं क्षेत्रों में मालवी के बीज भी खोजना चाहिये । बौद्धकालीन उज्जैन की पालि, अवन्तिजा-प्राकृत और सरस भूत-भाषा की विकास-सरणी अपभ्रंश की उस अवस्था तक पहुंचती है, जहां हमें मालवी के दर्शन होते है ।

अपभ्रंश की रचनाओं में अनेक ऐसे शब्द मिलेंगे, जिनसे प्रचलित मालवी शब्दों का साम्य दिखाई पड़ता है । सिद्ध एवं जैन लेखकों की रचनाओं में प्रयुक्त कुछ मालवी शब्दों को देखकर परमारजी को भी यही भ्रम हुआ [२] । राहुल जी कृत 'हिन्दी काव्य—धारा' में प्रस्तुत कुछ उद्धरणों में प्रयुक्त निम्नलिखित शब्दों को परमारजी मालव. के शब्द मान बैठे:—

सक्कर खंडेहि पायस पाय सोही—पृष्ठ ४८.

सहज अंगिठि भरि भरि रांधे—पृष्ठ १५८.

जीत्या संग्राम—पुरिस भया सूरा—पृष्ठ १६८.

सासूड़ो पालनड़े बहुडी हिंडोले—पृष्ठ १६१.

सोने रुपै सीझै काज—पृष्ठ १६३.

बळद बियाअल गविया बाँझे—पृष्ठ १६४.

सक्कर (शकर), रांधे (पकाती है), जीत्या (जीतकर), सासूड़ी (सास) बहुड़ी (वधू), सोने (स्वर्ण), रुपै (रौप्य), बळद (बैल) आदि शब्द गुजराती और राजस्थानी में भी उसी अर्थ में प्रचलित हैं । इन शब्दों के अतिरिक्त मालवी के कई शब्द ऐसे हैं, जो गुजराती और मालवी में समान

१. नामवरसिंह : हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग : पृष्ठ ८
२. मालवी और उसका साहित्य, पृष्ठ २१ ।

रूप से प्रचलित हैं[1] किन्तु इसका यह तात्पर्य तो नहीं हो जाता कि शब्द साम्य के कारण हम राजस्थानी और गुजराती को भी मालवी से निसृत मानलें।

वस्तुतः जिस समय अपभ्रंश के आंचल को छोड़कर उत्तर भारत की वर्तमान भाषाओं का जन्म हो रहा था, उस समय मालव, गुजरात, राजस्थान एवं महाराष्ट्र आदि प्रदेशों की एक ही भाषा रही है। आधुनिक भाषाओं का प्रेरणास्रोत एक ही है इसमें कोई सन्देह नहीं। प्रदेशगत भेद तो कालान्तर में विकसित हुए। गुजरात के सुप्रसिद्ध साहित्यकार कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने गुर्जर प्रदेश की आद्य-भाषा के सम्बन्ध में विचार प्रकट करते हुए मालव की भाषा के लिए भी यह अभिमत प्रकट किया है कि राजपूताना, मालवा और आधुनिक गुजरात में बसने वाले लोग एक ही संस्कृति और परम्परा से आबद्ध थे, एवं एक ही प्रकार की भाषा का प्रयोग करते थे। यह स्थिति हुएनत्संग के समय से अर्थात् छठी शताब्दि से लेकर सन् १३०० तक बनी रही जब पश्चिमी राजस्थानी और स्वर्गीय दिवेटिया के शब्दों में गौर्जरी अपभ्रंश का प्रारम्भ हुआ। इसके पश्चात् ही आधुनिक काल की गुजराती, मालवी और जयपुरी के रूप अलग हुए।[2]

इस प्रसंग में डा० सुनीतिकुमार चटर्जी के परम्पर-विरोधी दो मत भी विचारणीय हैं। एक तो यह कि पश्चिमी या शौरसेनी अपभ्रंश

---

१. सासूड़ी धूतारी वीर—चूंदड़ी, भाग २ पृष्ठ ३७.
 सासूडी मांगे रीतडी रे—वही, पृष्ठ २२
 सोनला वाकटडी ने रुपला कांगसडी—रढ़ियाली रात १।६४
 अधमण रुपाना भरत भराया—सवामण सोना नु कापडो—वही, १।५३
 दूध ने साकर पाजो—चूंदड़ी २।१७

२. दी ग्लोरी देट वाज गुर्जर देश—भाग ३ पृष्ठ ६८

शूरसेन या मध्यप्रदेश की चालू बोली के आधार पर मुख्यतया बनी थी। उनके अनुसार इधर पंजाब, राजस्थान तथा गुजरात की ओर, उधर कोशल की अपभ्रंश या अन्तिम युग की प्राकृत का उस पर प्रभाव पड़ा था [1]। डा० चटर्जी का दूसरा मत है कि शौरसेनी अपभ्रंश प्रारम्भ में किसी खास प्रान्त की अधिकृत लौकिक कथ्य या चालू भाषा नहीं थी। यह भाषा मुख्यतः गुजरात, राजस्थान, अन्तर्वेद तथा पंजाब में प्रचलित बोलियों के आधार पर स्थापित एक मिश्रित भाषा थी[2]। डॉ० चटर्जी अथवा के० एम० मुन्शी की मान्यताओं से एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि मालवी का सीधा सम्बन्ध किसी एक अपभ्रंश भाषा से अवश्य है। उसको राजस्थानी के अन्तर्गत एक उपभाषा या बोली नहीं मान सकते। इस तथ्य की गहराई में न जाने के लिए अपभ्रंश एवं प्राकृत के वैयाकरणों द्वारा प्रस्तुत सामग्री का विश्लेषण कर लेना आवश्यक है।

मार्कण्डेय एवँ 'कुवलयमाला कहा' के रचयिता उद्योतन सूरी ने जिस अपभ्रंश भाषा एवं उसके उपभेदों का विवरण प्रस्तुत किया है, वह लोक-भाषा का विकसित रूप है। मार्कण्डेय ने अपभ्रंश के तीन भेद नागर, उपनागर और ब्राचड़[3] के अतिरिक्त लगभग २७ विभिन्न बोलियों के नाम भी गिनाये हैं। उनमें अवन्त्य और मालव को दो भिन्न रूपों में स्वीकार किया है[4]। कुवलयमाला-कार ने एक कथा का मालवी में प्रयुक्त होने का उल्लेख भी किया है[5]। किन्तु इन प्रमाणों का भाषा के लिखित साहित्य के अभाव में कोई महत्व नहीं है। आधुनिक देशी बोलियों के मिश्रण का आभास हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण के रचना

१. राजस्थानी भाषा,—पृष्ठ ६०। २. वही पृष्ठ ३५
३. प्राकृत सर्वस्व (विजगापट्टम आवृत्ति)—पृष्ठ ३
४. वही पृष्ठ २
५. तणु-साम-महदेहे कोवणए माणजीविणो रोदे।
भाउअ भइणी तुम्हे भणिरे अह मालवे दिट्ठे

काल से अवश्य मिलने लगता है। उनकी 'देशी नाममाला' में अनेक ऐसे शब्दों का संग्रह है जो प्राकृत ही नहीं बल्कि संस्कृत साहित्य में भी अप्रयुक्त हैं। ऐसे शब्दों का प्रयोग बोलचाल की भाषा में होता रहा होगा, यह सहज ही सोचा जा सकता है। देवसेन, सोमप्रभ, मेरुतुङ्ग और हेमचन्द्र आदि जैन लेखकों की रचना के अरिरिक्त रामसिंह, अब्दुर्रहमान आदि लेखकों की रचनाओं में उपलब्ध शब्दों की सूची में आधुनिक मालवी, गुजराती और राजधानी में प्रचलित शब्दों को देखकर यह कहा जा सकता है कि मालवी के बीज भी उसी क्षेत्र में विद्यमान थे, जहां से गुजराती और राजस्थानी के अंकुर प्रस्फुटित हुए।[1]

---

१. (१) **हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण में आये हुए कुछ महत्वपूर्ण शब्दों की सूची दी जा रही है जो मालवी में भी प्रचलित है–**

दुआर (द्वार)	डज्झह (दाजणो) जलना
कुमार (कुम्भार)	देउल (देवकुल) देवळ
गड्डो	खोड़ी (खोड़)
बप्पुड़ा–बापड़ा (मालवी)	पराइ
डाल (शाखा)	छइल्ल (छैल)
ढोला (प्रियतम)	रुक्ख (रूँख)
डोंगर (पहाड़)	हळद्दी–हळदी
रूसणा (रोषयुक्ता)	हेट्ठ (नीचे) हेठ (मालवी)

२. **हेमचन्द्र की देशी नाममाला में आये हुए उन शब्दों की सूची जो किंचित् ध्वनि-परिवर्तन के साथ आज भी मालवी में प्रचलित है:–**

उक्खली (ओखली)	गग्गरी (गागरी)
उड़िदो (उड़दा)	गुत्ती (बन्धनम्) गाँती (मा)
उंबी (बक्क गोधूम)	छिण्णालो (छिनाल) छिनाला
ओड्ढणं (ओढणी)	जोवारी (धान्य)
ओसरिया (ओसारी)	झाड़ (लतागहनम्)

मालवी के अंकुर

यदि मालवी भाषा की प्राचीनता को ही खोजना है, तो सर्व प्रथम कालिदास के 'विक्रमोर्वशोय' नाटक के चतुर्थ अङ्क में उसका कुछ अंश प्राप्त होता है। ईसा की पांचवी शताब्दि में प्रचलित लोक-भाषा के माधुर्य की, जहां हमें झलक मिलती है, वहीं लोकगीतों की अखण्ड परम्परा के भी इस अंश में दर्शन होते हैं—

मइं जाणिअं मिअ-लोअणी णिसि अरु कोइ हरेइ।
जावणु णव-तडि सामलो धाराहरु वरिसेइ॥

मइं जाणिअं—प्रचलित मालवी में—में जाणी
मिअ—लोअणि ,, मिरगा नैणी

कट्टारी	बोक्कड़ो (बकरा) बोकड़ो (मा)
कुल्लड़	बोहारी (झाड़ू) बुवारी
कोइला : कोयला	मोग्गरो : मोगरो
खँवो) खवआ) कन्धा	राडी (राड़)

३. अपभ्रंश काव्यों में प्रचलित कुछ तद्भव शब्द जो मालवी में भी मिलते हैं:—

कुंड	छिवइ (स्पर्श करना)
खाट	झीण (पतला)
घरवार	ढोर
खुरप्प (खुरपी)	पड़ीवा (पड़वा)
घल्लइ (घालना)	मोड़
चक्खइ (चखना)	भोल (भोल)
चंगेड़ा (डलिया) चंगेड़ी	रसोइ
चड़इ	रंडी (वेश्या)
चुनइ	

कोइ— मालवी में —कोइ सामलो—मालवी में —सांवळो
वरिसेइ ,, —बरस्यो

देवसेन (सावयधम्म दोहा)

गाइ पइण्णइ खडभुसइ किण पयच्छइ दुद्धु ।

गाइ—मालवी में प्रचलित—गाय
खडभुसइं ,, खल भूसी
किण ,, कइं नो (क्या नहीं)
दुद्ध ,, दूध्–दूद

काइं बहुत्तइं जँपिग्रइं जं अप्पणु पडिकूलु ।

काइं—प्रचलित मालवी में—कांइ कंइ (क्या)
बहुत्तइं ,, भौत हे
अप्पणु ,, आपणो

रामसिह (पाहुड़ दोहा)

अक्खर डेहिजि गव्विया कारणु ते ण मुणांत

अक्खर—प्रचलित मालवी में—अक्खर
ण ,, नी

एक्कुजि अक्कखरु तं पढहु
एकज अक्खर उ पढ़ो (मालवी)
हउं सुगुणी पिउ णिग्गुणउ
हूं (हऊं) सुगणी पियु निर्गुण्या (मालवी)

जोइन्दु (परमात्म प्रकाश)

जो जिण सो हउं सोजि हउं

जा—मालवी में—जा | सो—मालवी में—सो
हऊं ,, हउं | सोजि ,, सोज्

अब्दुर्रहमान (सन्देश रासक)

गाह पढिज्जसु इक्क पिय कर लेविणु मन्नाइ

इक—मालवी में—एक्क | पिय—मालवी में—पिय
लेविणु मन्नाइ —मालवी में—मनइ लीजे

पाली रूअ पमाण पर धण सामिहि घुमन्ति

धण—मालवी में—धण (धन्या) सामि—मालवी में—सामि (स्वामी)

सोमप्रभ सूरि (कुमारपाल प्रतिबोध)

तो देसड़ा चइज्ज

देसडा— मालवी में —देसड़ा

जित्तिउ पुज्जइ पंगुरणु तित्तिउ पाउ पसारि

मालवी—उत्ताइ पावं पसारिये जित्ती लाम्बी सोड़

निम्मल-मुत्तिअ-हार मिसि रइय चउक्कि पहिट्ठ

मिसि—मालवी में—मिस (बहाने) चउक्कि—मालवी में—चउक (चौक)

पिउ हउं थक्किय सयलु दिणु

पिउ—मालवी में—पिउ, पियु | हउं—मालवी में—हऊं, हूं
थक्किय ,, थाकी, थकीगी | सयलु ,, सगळा

मेरुतुंग (प्रबन्ध चिन्तामणि)

झोली तुट्टुवि किं न मुउ

झोली—मालवी में—झोली किं न मुउ—मालवी में—क्यों नी मर्या

च्यारि बइल्ला धेनु दुइ मिट्ठा बुल्ली नारि

च्यारि–मालवी में–चारि बइल्ला—मालवी में—बळद्या

दुइ ,, दोइ मिटठा बुल्ली नारि ,, मिठ बोली नार

उग्या ताविउ जिहि न किउ

उग्या–मालवी में–उग्या, उगिया ताविउ–मालवी में–तावड़ा

के दह अहवा अट्ठ

के – के (अथवा)

दह–मराठी का दहा (दस)

मह कन्तह इक्कज् दसा

म्हारा कन्त की एक्कज् दसा (है)

उरि लच्छिहि मुहि सरसतिहि

लच्छि–मालवी में–लच्छि सरसति–मालवी में–सरसति

एहु जम्मु नग्गहं गियउ

नग्ग–मालवी में–नागा (व्यर्थ) गियउ–मालवी में– गयो, गियो

हेमचन्द्र (प्राकृत-व्याकरण)

ढोल्ला मइँ तुंह **वारियो** मा कुरु दीहा माणु

निद्दए गमिहि **रत्तडी दडवड** होइ विहाणु

ढोल्ला–मालवी में–ढोला मइँ–मालवी में–मइं, मैं

वारिया ,, वारियो, (गीतों में प्रयुक्त) निद्दए ,, नींदड़ली

रत्तड़ी ,, रत्तड़ी, रातड्ड़ी दडवड ,, दड़ादड़

सायरु **उप्परि** तणु धरइ **तलि घल्लइ** रयणांइ

उप्परि–मालवी में–उप्परि, उप्पर

तलि– ,, –तले घल्लइ–मालवी में–घाले हे (डालना)

जो गुण गवइं अप्पणा पयडा करइ परस्नु

गोवइ—मालवी में—गोवे अप्पणा—मालवी में— अप्पणा
करइ ,, करे

बहिणि महारा कन्तु जइ भग्गा घर एंतु

बेन म्हारो कंत, जो भागी ने घरे आतो (मालवी)

हियडा फुट्टि तड त्ति करि कालक्खे वे काइं

हियडा—मालवी में—हिवड़ा काइं—मालवी में—काइँ

कंतु महारउ हलि सहिए निच्छइं रूसइ जासु

कंतु—मालवी में—कंत म्हारउ—मालवी में—म्हारा, हमारा
हेलि ,, हेलि (सखी) रूसइ जासु ,, रूसइ जावे

महु कंतहो बे दोसड़ा

दोसडा—मालवी में—दोसड़ा बे (गुजराती)—मालवी में—दो

भमरा एत्थुवि लिम्बडइ के वि दियहडा विलम्बु

भमरा—मालवी में—भमरा लिम्बडइ—मालवी में—लीम्बड़ी लीमड़ी

तो हउं जाणउ एहो हरि

तो हउं (हूं) जाणउ—मालवी में—तों हउं (हूं) जाणूं

ओ गोरी मुह—निज्जिअउ बद्दलि लुक्कू मियंकु

गोरी—मालवी में—गोरी मुँह—मालवी में—मुँह
बद्दलि ,, बदली, बादळी

साव सलोणी गोरडी नवखीक वि विस गंठि

सलोणी—मालवी में—सलोणी गोरडी—मालवी में—गोरड़ी
विस ,, विस

—अपभ्रंश के प्रस्तुत उद्धरणों में जहां उकार-बहुल प्रवृत्ति परिलक्षित होती है, प्रचलित मालवी में ओकार-बहुल शब्दों का ही प्राधिक्य है।

—सर्वाधिक रूप से प्रचलित 'ड' का प्रयोग मालवी में 'ड़' के रूप में होता है।

—शब्द के अन्त में 'ड' अथवा 'ड़' जोड़कर तद्भव शब्दों को देशी प्रभाव के अनुकूल बनाने की प्रवृत्ति भी उल्लेखनीय है—

गारी : रात : रत्तडी, रातड़ी

—'श' 'ष' के स्थान पर प्रायः 'स' का ही प्रयोग हुआ है।

—'न' के स्थान पर 'ण' का प्रयोग भी उल्लेखनीय है।

—वर्ण, विपर्यय का भी एकाध उदाहरण मिल जाता है।

ल=न	लीम्ब=निम्ब
	लीमड़ी=नीमड़ी
द=ध	दुद्=दूध

—निर्विभक्तिक पदों मे परसर्गों का प्रयोग—

तणे, केर, केरा

—सर्वनाम में महारा (म्हारा) एवं 'हऊँ' का प्रचलन।

—जो, सो, किं, काइं, (क्या), के (अथवा) जु (निश्चयबोधिक) आदि का प्रयोग अपभ्रंश और मालवी में समान रूप से पाया जाता है।

—नकारात्मकता का द्योतक शब्द 'ण' मालवी में नी, नई के रूप में प्रचलित है।

—संख्या-सूचक कुछ शब्दों का स्वरूप और उच्चारण भी समान है

सउ (१००) बत्तीस बत्तीसड़ा (३२) दुइ दोई (२)

—संयुक्त व्यंजनों में सरलता लाने की दृष्टि से किया गया क्षतिपूरक दीर्घीकरण भी वैसा ही है—

नीसासा=निस्सास	ऊसास=उस्सास
नीसर्या=निस्सरइ	विसर्यो=विस्सरइ

नवीं शताब्दि से लेकर चौदहवीं शताब्दि के अन्त तक की विभिन्न

अपभ्रंश कही जाने वाली उक्त रचनाओं में मालवी के प्रारम्भिक स्वरूप का निर्देशन किया जा चुका है। उसके पश्चात् उन्नीसवीं शताब्दि के पूर्वार्ध तक मालवी में लिखा हुआ साहित्य अप्राप्य है। अतः उसके विकास के क्रम का विवेचन करना अभी तो असम्भव ही लगता है। किन्तु राजस्थानी प्रदेश में विकसित भाषा और प्राप्त ग्रन्थों के आधार पर मालवी के तत्कालीन रूप का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। बीसलदेव रासो और ढोला–मारु रा दूहा आदि की भाषा से मिलते–जुलते परम्परागत कुछ मालवी लोक–गीत मिल जाते हैं।

[1]मूकन लागी बेलड़ी गया ज सींचणहार। ३७४
मूती सेज बिछाई। १४
सूती सेजइ एकली। ४७
कदी मिलूं उण साहिबा कर काजळ की रेख। ४४

मालवी—[2]चंदा थारी चांदनी सूती पलंग बिछाय।
जद जागूं जद ऐकली, मरुं कटारी खाय।।
टोंकी दे मेलां चड़ी, कर काजळ की रेख।
सायब को सारो नहीं, लिख्या विधाता लेख।।

---

१. ढोला मारु रा दूहा (काशी ना० प्र० सभा)
२. मालवी दोहे

द्वितीय अध्याय

(भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन-क्रम)

मालवी का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन-क्रम ।

मालवी ।

भाषागत सीमाएँ ।

मालवी के उपभेद ।

रांगड़ी के उपभेद ।

मालवी का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन-क्रम

आधुनिक भाषा-शास्त्रियों ने स्थूल रूप से हिन्दी की विभिन्न बोलियों अथवा उप-भाषाओं को क्षेत्रीय आधार पर पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी, इन दो प्रमुख भागों में विभाजित कर पुराने पंडितों की तरह भाषाओं, के अनेक भेद, उपभेद और विभेद आदि प्रस्तुत किये हैं। मालवी का भाषा-विज्ञान की दृष्टि से सर्वप्रथम अध्ययन डा० ग्रियर्सन ने सन् १९०७–८ के लगभग प्रस्तुत किया। सम्पूर्ण भारत की विभिन्न भाषा और बोलियों के अध्ययन का यह कार्य अपने आ में एक विशाल आयोजन था। अतः मालवी के विभिन्न भेदों और उपभेदों का व्यापक एवं विस्तृत अध्ययन करना उस समय सम्भव भी नहीं था। फिर भी डा० ग्रियर्सन ने मालवी का जो अध्ययन प्रस्तुत किया उससे प्रेरणा पाकर, मार्गदर्शन लेकर मालवी के वैज्ञानिक अध्ययन का मार्ग अधिक प्रशस्त ही हुआ है। भाषा के अध्ययन के क्षेत्र में तुलनात्मक एवं विवरणात्मक (कम्पेरेटिव एण्ड डिस्क्रिप्टिव) पद्धति को प्रारम्भ करने की दृष्टि से गियर्सन महोदय का यह प्रयास महत्वपूर्ण कहा जावेगा। संक्षिप्त में मालवी के सम्बन्ध में उनके द्वारा प्रस्तुत किये गये अध्ययन का सार निम्नलिखित है:—

मालवी—वास्तविक अर्थ में मालवी मालवा की भाषा है। जिस क्षेत्र की यह भाषा है उस क्षेत्र की सीमाओं का यह सही विवरण प्रस्तुत करती है।

मालवी का क्षेत्र विस्तार—यह मालवा के पठार में बोली जाती है अर्थात् इन्दौर, भोपाल, भोपावर और मध्यभारत क्षेत्र के पश्चिमी मालवा की एजेन्सी के क्षेत्र भी इसमें सम्मिलित हैं।

पूर्व में इसका विस्तार ग्वालियर एजेन्सी के दक्षिण-पश्चिम भाग एवं राजपूताना के संलग्न भाग कोटा तक पाया जाता है।

—मेवाड़ की पूर्वी सीमा पर स्थित टौंक रियासत के निम्बाहेड़ा परगने में भी यह बोली जाती है। भौगोलिक दृष्टि से यह भाग पश्चिमी मालवा का है।

—नर्बदा को पारकर हुशंगाबाद जिले के पश्चिमी भाग में एवं बैतूल जिले के उत्तरी क्षेत्र में विकृत रूप से बोली जाती है।

—छिंदवाड़ा और चांदा की कुछ जातियों में भी इसका प्रचलन है[1]।

मालवी की भाषागत सीमाएं

१. उत्तर :— जयपुरी (राजस्थानी)

२. पूर्व :— बुंदेली (पश्चिमी हिन्दी) सागर व ग्वालियर

३. दक्षिण:— नृसिंहपुर की बुंदेली

४. दक्षिण-पूर्व:— बरार की मराठी, (राजस्थान की निमाड़ी)

५. उत्तर-पश्चिम:—मेवाड़ी (मारवाड़ी का एक रूप)

६. दक्षिण-पश्चिम:—गुजराती, खानदेशी।

—मालवी स्पष्टतः एक राजस्थानी बोली है जिसका सम्बन्ध मारवाड़ी और जयपुरी दोनों से है।

—अपने सम्पूर्ण क्षेत्र में जहां यह बोली जाती है, उसकी एक-रूपता विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

—इसकी एक उप-भाषा सौंधवाड़ी भी है जो सौंधियों के द्वारा बोली जाती है।

—मध्यप्रदेश की मालवी विकृत है।

---

१. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, ग्रंथ ६, भाग २, पृष्ठ ५२

—मालवा के राजपूतों द्वारा बोली जाने वाली मालवी 'रांगड़ी' कहलाती है।

मालवी
├── रांगड़ी या रजवाड़ी
└── मालवी या अहीरी[1]

यह बात उल्लेखनीय है कि ग्रियर्सन ने मालवी को राजस्थानी के पांच उप-भेदों में रखकर उसके मुख्य भेद रांगड़ी और सौंधवाड़ी पर विशेष विचार किया है। प्रसिद्ध भाषा-शास्त्री सुनीतिकुमार चटर्जी ने भी मालवी का राजस्थान की बोलियों में उल्लेख भर किया है[2]। डा० ग्रियर्सन के आधार पर श्री मोतीलाल मेनारिया ने भी मालवी को राजस्थानी के अन्तर्गत पांच प्रादेशिक बोलियों में सम्मिलित किया है[3]। किन्तु मेनारियाजी ने मालवी की विशेषताओं के सम्बन्ध में कुछ विशेष उल्लेख किया है:—

१. मालवी समस्त मालव प्रान्त की भाषा है। यह मेवाड़ और मध्य प्रान्त के कुछ भागों में बोली जाती है।
२. अपने सारे क्षेत्र में इसका प्रायः एक ही रूप देखने में आता है।
३. इसमें मारवाड़ी और ढूंढाड़ी दोनों की ही विशेषता पाई जाती है।
४. कहीं कहीं पर मराठी का प्रभाव भी झलकता है।
५. यह एक बहुत ही कर्ण-मधुर एवं कोमल भाषा है।
६. मालवा के राजपूतों में इसका एक विशेष रूप प्रचलित है जो रांगड़ी कहलाता है। यह कुछ कर्कश है।[4]

उक्त विशेषताओं में यद्यपि ग्रियर्सन के विचारों की पुनरावृत्ति की गई है, फिर भी मेनारिया जी ने मालवी और सौंधवाड़ी की गुणात्मक स्थिति पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

---

१. वही पृष्ठ ५२–५३
२. भारतीय भाषा और हिन्दी, पृष्ठ १५३
३. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ ५   ४. वही,

मालवी के उपभेद

डा० ग्रियर्सन ने सन् १९११ की जन-गणना की रिपोर्ट के आधार पर मालवी के निम्नलिखित भेद किये हैं :—

	बोलने वालों की संख्या[1]
१. स्टेण्डर्ड मालवी या अहीरी—	
(इसमें रजवाड़ी अथवा रांगड़ी की संख्या भी सम्मिलित है)	३८७२२८८
२. सौंधवाड़ी—	२०३५५६ ([2])
३. होशंगाबाद की मालवी (मालवी, बुंदेली व निमाड़ी का मिश्रित रूप)	१२६५२३
४. मिश्रित मालवी— (बेतूल, छिंदवाड़ा और चांदा की मालवी)[3]	२७४७२३

डा० ग्रियर्सन के पश्चात् मालवी के उपभेदों का विस्तृत विवेचन रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर' ने प्रस्तुत किया। समीरजी ने मालवी को बुंदेली और गुजराती की मध्यवर्ती राजस्थानी मानकर उसके दो भेद किये हैं—मालवी और रांगड़ी। अभी तक मालवी और गुजराती के निकटतम सम्बन्ध की ओर किसी का ध्यान नहीं गया था। वस्तुतः मालवी पर राजस्थानी व गुजराती का समान रूप से प्रभाव पड़ा है। द्विवेदीजी ने उज्जैन के निकटवर्ती मध्यभाग की मालवी को मुख्य-भाषा माना है और रांगड़ी के अनेक स्थानगत भेद प्रस्तुत किये हैं।

रांगड़ी

१. रजवाड़ी:—राजपूतों की बोली जिसमें मेवाड़ी व मारवाड़ी का मिश्रण है।

---

१. **इण्डेक्स आफ लेंग्वेज नेम्स**। पृष्ठ १८१, १७२।

२. **वही**, पृष्ठ १९१। ३. **वही**, पृष्ठ १८१।

२. निमाड़ी।

३. सौंधवाड़ी।

४. पाटवी:—सी. पी. के चांदा जिले में एक छोटी सी जाति द्वारा बोली जाती है।

५. भोयरी:—बेतूल के भोयर लोग बोलते हैं।

६. ढोलेवाड़ी:—हुशंगाबाद के पश्चिम में बोली जाती है।

७. भोपाल की मालवी।

८. हुशंगाबाद की मालवी।

९. काटे की मालवी या डंगेसरी—यह चम्बल के डांग की भाषा है।

१०. मालवइ:—पंजाबी का एक उपभेद है।

समीरजी द्वारा प्रस्तुत मालवी का अध्ययन वास्तव में मालव प्रदेश की भाषा की दृष्टि से एक सीमा-रेखा प्रस्तुत करने में आधारयुक्त मार्ग-दर्शन का काम करेगा। मालवी के स्थान-सूचक उपभेदों के अतिरिक्त उन्होंने इसके क्षेत्र-विस्तार की एक स्थूल सीमा-रेखा भी प्रस्तुत की है। विकृत रूप में मालवी का विस्तार निम्नलिखित है :—

पूर्व:—मध्यप्रान्त के हुशंगाबाद, बेतूल आदि जिले।

उत्तर:—ग्वालियर, टोंक तथा कोटा के कुछ भाग।

पश्चिम:—झालावाड़।

दक्षिण:—भीली बोलियों में जाकर समाप्त।

डा. श्याम परमार ने समीरजी के वर्गीकरण के आधार पर मालवी के कुछ और उपभेदों की कल्पना कर डाली[२]। स्थान-विशेष एवं जातियों को लेकर मालव जैसे विस्तृत एवं विभिन्न संस्कृतियों से युक्त

१. मालवी के भेद और उसकी विशेषताएं—शीर्षक लेख. पृष्ठ ५१-५२ (हिन्दुस्तानी एकेडमी प्रयाग। जनवरी १९३३.)

२. स्थान-सूचक उपभेद— (टिप्पणी अगले पृष्ठ पर)

प्रदेश में भाषा के अनेक भेद, उपभेद माने जा सकते हैं, क्योंकि ग्राम और नगर, स्त्री और पुरुष, शिक्षित और अशिक्षित आदि की बोली में कुछ भेद या अन्तर मिल हो जाता है। किन्तु स्थान, और एक ही स्थान पर बसने वाली विभिन्न जातियों के आधार पर भाषा के अनेक उपभेदों की कल्पना कर लेने में न तो कोई तथ्य है, और न भाषा-विज्ञान की दृष्टि से उसका सबल आधार ही। परमार जी ने मन्दसौर, रतलाम आदि स्थानों के नाम पर मालवी के भेदों में मन्दसौरी, रतलामी आदि नामकरण किये हैं। इसी तरह नागर आदि जातियों के नाम पर नागरी, गूजरी आदि उपभेदों की सृष्टि भी कर डाली गई। वस्तुतः मन्दसौर और रतलाम की बोली में कोई विशेष अन्तर नहीं है। रजवाड़ी प्रभाव दोनों पर ही परिलक्षित होता है। मन्दसौर जिले के अन्तर्गत सोंधवाड़ का कुछ क्षेत्र भी सम्मिलित है। मन्दसौर जिले के पूर्वी क्षेत्र की ग्रामीण जनता की बोली की दृष्टि से मन्दसौर की बोली और सौंधवाड़ी में भी पर्याप्त

उज्जैन (आदर्श मालवी)

उत्तरी मालवी	दक्षिणी मालवी	पूर्वी मालवी	पश्चिमी मालवी
	निमाड़ी	उमठवाड़ी	बांगड़ी
—१. सौंधवाड़ी	२. मन्दसौरी	३. डंगेसरी	४. रतलामी
उत्तर-पूर्व			उत्तर-पश्चिमी

जातीयता सूचक उपभेद

१. **नागरी:**—नागर, औदिच्य और गुजराती माली।

२. **गूजरी:**—गूजर जाति की बोली।

३. **मेवाती:**—मेवाती मुसलमानों की बोली।

४. **पाटवी:**—पटवा जाति की बोली। —गुजराती क्षेत्र की पटलूनी।

देखें, वीणा (मासिक, इन्दौर) मार्च-अप्रेल का अङ्क १९५४, पृ. २३९-४०

समानता है। सौंधवाड़ी मालवी का एक प्रमुख उपभेद हैं। सौंधवाड़ी के अतिरिक्त मालवी का दूसरा मुख्य उपभेद रांगड़ी है। रांगड़ी भाषा का उल्लेख करते हुए मालकम ने लिखा है कि इस प्रदेश की बोली एवं 'रांगड़' लोगों के प्रति घृणा का भाव व्यक्त करने के लिए मराठों ने रांगड़ी कहना शुरू किया।[1] वस्तुतः सौंधवाड़ी, रांगड़ी, उमठवाड़ी और निमाड़ी; मालवी के ये चार उपभेद ही प्रमुख हैं, जिनका मालव में व्यापक अस्तित्व है। वैसे आदिम जातियों के स्तर से परे जीवन व्यतीत करने वाली कुछ जातियों के आधार पर—अहीरवाटी, बंजारी, भीली, देसवाली, गूजरी, निहाली, पारधी, बागरी आदि बोलियों की गणना अलग से की गई है[2]।

---

१. मेमायर्स आफ सर जान मालकम—भाग २ पृष्ठ १६१।
२. सेन्सस आफ सेण्ट्रल इण्डिया १६३१-भाग १६ टेबल १५।

तृतीय अध्याय

(निकटवर्ती भाषाओं का प्रभाव)

(अ) मालवी पर निकटवर्ती भाषाओं का प्रभाव ।

(आ) गुजराती और मालवीः—

* शब्द एवं वाक्य-विन्यास ;
* वाक्यों की समानता ।
* लोक-गीत ।
* व्याकरण-सम्बन्धी प्रवृत्तियां ।

(इ) राजस्थानी और मालवीः—

* कुछ लोक-गीत ।
* समानताएं व भिन्नताएं ।

(ई) बुन्देली प्रभाव

मराठी प्रभाव

मालवी पर निकटवर्ती भाषाओं का प्रभाव

मालवा में मध्ययुग से ही राजनीतिक एवं प्राकृतिक (अकाल आदि) कारणों से आसपास के प्रदेश की विभिन्न जातियां यहां आकर बसीं। इन जातियों के सम्पर्क से मालवी में विभिन्न भाषाओं के शब्द इस तरह से घुलमिल गये है कि भाषा-विशेष के ज्ञान के बिना उन्हें पहिचाना भी नहीं जा सकता। जब हम मालव में बसने वाली कुछ जातियों के सम्बन्ध में सोचते हैं, तो सर्वप्रथम हमारा ध्यान कृषि-कर्मी जातियों की ओर जाता है, जिनमें अपनी आदिम भाषा के संस्कार अवश्य मिल सकते हैं, और अनुमान की अपेक्षा ठोंस प्रमाण पर भाषा-विषयक गुत्थियां सुलझ सकती हैं। यहां की कृषि-प्रधान जातियों में गूजर, आंजना, रजपूत, जाट, अहीर, मीणा, देसवाली, खाती, कुलमी (पाटीदार) आदि जातियां विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें अहीर, आंजना आदि अपने को रजपूती परम्परा से सम्बद्ध मानते हैं, किन्तु इनमें गोपजीवन एवं कृषि सभ्यता के अंकुर आज भी विद्यमान हैं, जिन्हें प्राचीन काल की आभीर जाति की संस्कृति से सम्बद्ध किया जा सकता है। इसी प्रसंग पर आभीर जाति की भाषा का जो संदर्भ हमें पूर्ववर्ती साहित्य में मिलता है, उस पर विचार कर लेना अप्रासंगिक नहीं होगा।

कुछ विद्वानों ने अपभ्रंश को मूलतः आभीरों की बोली कहा है। महाभारत के अनुसार आभीरों का सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है, जब ये जातियां पंचनद में रहती थीं। दूसरी शताब्दि के उत्तरार्ध में इस जाति के काठियावाड़ में होने के प्रमाण भी मिलते हैं, उसकी पुष्टि काठियावाड़ में प्राप्त सन् १८१ ई० की एक राजाज्ञा से होती है, जिसमें आभीर सेना-

पति रुद्रभूति का उल्लेख है। एन्थोव्हेन ने तीसरी शताब्दि के अन्त में काठियावाड़ी क्षेत्र के आभीरों के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए आभीर राजा ईश्वरसेन की ओर संकेत किया है। इलाहाबाद में समुद्रगुप्त के लौहस्तम्भ लेख (३६० ई०) से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय तक आभीरों का प्रभुत्व गुजरात, मालवा और राजस्थान में हो गया था, और ये झांसी तक फैले हुए थे। आधुनिक राजपूत उपजातियां और गोत्रों में से बहुत से इन्हीं में से निसृत हुए हैं। अन्य जातियों का भी इनमें मिश्रण हो गया है[1]। अपभ्रंश के साथ गुर्जर जाति का भी सम्बन्ध जोड़ा जाता है। भोज ने गुर्जरों के लिए लिखा है कि वे अपभ्रंश से ही तुष्ट होते हैं[2]। गुर्जर लोग आभीर जाति की एक शाखा जान पड़ते हैं। इन जातियों का अपभ्रंश पर प्रभाव अवश्य पड़ा है। किन्तु मालवी के साथ उसका सीधा सम्बन्ध जोड़ना कठिन है। वैसे अहीर, गूजर आदि जातियों की प्रचलित बोली को ग्रियर्सन ने मालवी या 'अहीरी' संज्ञा अवश्य दी है, [3] किन्तु मालवा में गुजरात और राजस्थान से केवल अहीर, आंजना या कुलमी लोग ही नहीं आये, ब्राह्मण, वैश्य एवं अन्य जातियाँ भी यहां आकर बसी हैं और इन सबका प्रभाव यहां की भाषा पर पड़ा है। स्वतन्त्र रूप से आभीरी के अस्तित्व को मालवी में खोज निकालना असम्भव है। वैसे मालवी, राजस्थानी और गुजराती सहोदरा होने के कारण एक-दूसरे के अधिक निकट हैं, और इस निकटता के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक आधार-प्रामाण्य पर्याप्त मात्रा में प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

१. एथनाग्राफीकल सर्वे आफ बाम्बे 'मोनोग्राम क्रमांक १, पृष्ठ १-५ (डा० डी० आर० भाण्डारकर)'

२. अपभ्रंशेन तुष्यन्ति स्वेन नान्येन गुर्जराः—
सरस्वती कण्ठा-भरण, पृ. १४२

३. लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया, ग्रन्थ ६, भाग २, पृष्ठ ५३।

मालवा में बसने वाली अधिकांश जातियां मालव के संलग्न प्रदेश गुजरात, मेवाड़ और मारवाड़ से आकर बसी हैं। मालकम के अनुसार ब्राह्मण वर्ग की छः उपजातियों के —(छन्याती ब्राह्मण)—दायमा, पारिख, गुर्जरगौड़, सारस्वत, सखवाल एवं खण्डेलवाल लोग अपने को मालवी ब्राह्मण कहकर इस प्रदेश के शाश्वत निवासी होने का दावा करते हैं।[1] किन्तु ये ब्राह्मण जातियां भी अन्य जातियों की तरह गुजरात और राजस्थान से आई हैं। गुजरात से आने वाली जाति का प्रथम प्रमाण हमें वत्स भट्टि की प्रशस्ति में मिलता है। रेशम के वस्त्रों का व्यवसाय करने वाली बुनकरों की यह पटवा जाति थी, जिसने यशोधर्मन् के पूर्व मन्दसौर में एक विशाल मन्दिर बनवाया था[2]। पटवाओं के पश्चात् गुजरात से आने वाली दूसरी जाति नागर ब्राह्मणों की है। भोज के समय से ही इस जाति ने मालव में आकर बसना प्रारम्भ कर दिया था। सोलंकी एवं चौलुक्य राजाओं के समय से ही राजकारणों को लेकर नागर ब्राह्मण इस प्रदेश में आकर बस गये थे। रामपुरा (मन्दसौर जिला) की एक बावड़ी में से गुजराती भाषा में एक शिलालेख मिला था, जिसमें यह उल्लेख है कि नड़ियाद से आये हुए नागर ब्राह्मणों ने यह बावड़ी बनवाई थी। सिद्धराज जयसिंह ने विक्रम सम्वत् १०९४ में महादेव नामक एक नागर ब्राह्मण को मालव का सूबेदार बनाया था। सम्भव है कि नागर ब्राह्मणों के साथ ही गुजरात से अन्य जातियां भी कालान्तर में आकर बस गई हों। आज मालवा में गुजरात से आई हुई निम्नलिखित मध्यमवर्गीय जातियां निवास करती हैं :—

१. नागर:— ब्राह्मण एवं बनिया
२. मोड़ :— ब्राह्मण एवं बनिया

---

१. मेमायर्स ऑफ सर जान मालकम, भाग २, पृष्ठ ११२.
२. फलीट, सी० आय० आय० ग्रन्थ ३ पृष्ठ ८१.
३. 'मालवा ऊपर गुजरात नो प्रभाव' शीर्षक लेख, बुद्धिप्रकाश गुजराती त्रैमासिक अप्रेल–जून १९३९, पृष्ठ १४४-४५.

३. श्रीमाली:— ब्राह्मण व बनिया एवं यजुर्वेदी ब्राह्मण
४. पारख:— ब्राह्मण एवं बनिया
५. औदिच्य:— ब्राह्मण
६. नीमा:— बनिया
७. पटवा:— बनिया
८. सोलंकी:— राजपूत, दर्जी
९. मकवाना:— दर्जी, बनिया, एवं राजपूत
१०. गुजराती नाई, माली आदि
११. कुलमी (पाटीदार) आदि।

इसी तरह माहेश्वरी, ओसवाल, पोरवाल, मोड़ एवं श्रीमाली आदि वणिक वर्ग की परम्परा भी गुजरात के श्रीमाल और मोढेरा से जोड़ी जा सकती है।[1]

हिन्दुओं के शासन के पश्चात् मुसलमानों के राज्य में भी यहां अनेक जातियों का आगमन हुआ। मालवा पर मराठों का अधिकार होने के पश्चात् दक्षिण के मराठा, महाराष्ट्रीय ब्राह्मण एवं कुछ निम्न वर्ग की जातियां यहां आकर बस गईं। गुजराती जातियों के अतिरिक्त राजस्थान एवं उत्तर भारत से आई हुई ब्राह्मण एवं वैश्यों की अनेक उपजातियां विद्यमान हैं। मालकम ने मालव की ब्राह्मण जातियों के सम्बन्ध में विस्तृत परिचय देते हुए लिखा है कि जोधपुरी ब्राह्मण व्यापार करते हैं। उदैपुरी ब्राह्मण कृषि एवं गुजराती ब्राह्मण पूजा एवं व्यवसाय कर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इन ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य ब्राह्मणों की ८४ उप-जातियां हैं, जो पन्द्रह पीढ़ियों से पहिले गुजरात, उदयपुर, जोधपुर, जयपुर एवं कन्नोज आदि प्रदेश से आकर बसी थीं[2]। नवीन युग में

१. दी ग्लोरी देट वाज गुर्जर देश, भाग ३ पृष्ठ २२

२. मेमायर्स ऑफ सर जान मालकम, भाग २ पृष्ठ १२२–२४।

यांत्रिक सभ्यता के साथ ही मिल, कारखानों में काम करने के लिये बुन्देलखण्ड, कोटा और खानदेश आदि प्रदेशों से बहुत से लोग आकर यहां बसे हैं। इस प्रकार अपनी-अपनी संस्कृति, आचार-विचार एवं लोक-भाषाओं के साथ ही गुजरात, राजस्थान, बुन्देलखण्ड एवम् दक्षिण आदि निकटवर्ती क्षेत्रों से आई हुई परम्परा और संस्कारों का एक सहयोग लेकर मालव की लोक-संस्कृति, लोक-भाषा ने एक नवीन स्वरूप धारण कर लिया है।

गुजराती और मालवी

सदियों से सम्पर्क के कारण मालवी पर गुजराती का प्रभाव अधिक व्यापक है। यहां तक कि लोक-गीत एवं सामाजिक रीति-नीति में भी बहुत कुछ साम्य है। गुजराती भाषा अधिक कर्ण-प्रिय है। कोमल एवं मधुर वर्णों के कारण उसमें मधुरता आ जाती है। मालवी का मार्दव एवं मिठास गुजराती की देन है। कहीं-कहीं तो उक्त दोनों भाषाओं की शब्दावलियों एवं वाक्य-विन्यास में इतनी समानता है कि दोनों में कोई भेद ही उपस्थित नहीं हो पाता। गुजराती गीतों की कुछ ऐसी पंक्तियां प्रस्तुत की जा रही हैं, जो मालवी का स्वरूप लिये हुए हैः—

उगमणा उगेला भाण
आथमणा हरणां हल खेड़े—६

जी रे—माण्डण रूडी कांचली
जी रे—मेडीनु माण्डण ढोलियो—८
नहि देशे माता तारी (मालवी, म्हारी) गाळ—९
वीणी चूंटी नै गोरी ए छाब भरी—१०
कां कां रे तमारी देह दूबली
आंखड़ली रे जल भरी—११
धीडी (धीयड़ी) मोरी कयां तमें दीठा
मैं तमारा कयां मन मोह्या रे—१४
लाडला लाडली छाना कागळ (द) मोकले—२३

तेडाव्यां भाई-भोजाई रे—२३
जोशीडा ने तेडावां रे—३१
पोढ्या जागो रे बाई ना बीरा—४८
नानापण मा लाड लडाव्या—६६
झालन्ती मोलन्ती नीसरी—७०
धुतारो धुती गयां—१०५
हेडा नो हार (मालवी–हिवड़ा नो हार)—१२१ [1]
रूडा घोडला शणगारो—१
वधावो रे आवियो—५
रंगो पारवती नी चूंदड़ी—७
मालण गूंथे छोगलो रे—१०
कांई जांबू वरणी कोयल रे, कांई आंबा डाले बेठी रे—४०
अंगुठो मरडी पियु जगाडिया—४१
दाडम दंतीना सायबा—१
आंबा केरी डालखी जी माणा राज—३
डेरा तारिणया जी मरणा राज—४
तलावड़ी मां अमीरस पाणी—६
रमता आवो रे हूं वारी जाऊं—१४
दीवो मेल्यो रसिया मांडवा हेठ रे—४५
हैया केरो हार (मालवी—हिवड़ा केरो हार)[2]

शब्द एवं वाक्य-विन्यास

गुजराती और मालवी के ऐसे हजारों शब्द मिलेंगे जो अपने स्वरूप

---

१. प्रस्तुत पंक्तियाँ स्व० झवेरचन्द मेघाणी द्वारा सम्पादित चूंदड़ी भाग १, से उद्धृत की गई हैं। संलग्न अंक पृष्ठ–संख्या के सूचक हैं।

२. चूंदड़ी भाग १, एवं भाग २ से उद्धृत।

के कारण अभिन्नता लिये हुए दृष्टिगत होते हैं । निम्नलिखित मालवी और गुजराती शब्दों की सूची विचारणीय है:—

	हिन्दी अर्थ		हिन्दी अर्थ
अत्तर	इत्र	छाबड़ी	डलिया
अगवानी		छेवट	आखरी
आपणा		छाना—छाना	चुपचाप
अने, ने	और	जान	बारात
आंगली	अंगुली	झोंट्यु (मा० झोंटी)	भैंस
आलस	आलस्य	झबूके	लहराती हैं
आगळ	आगे	टोपली	डलिया
आंगणे	आंगन में	टीडली	आभूषण
ओरड़ा		तोरण	द्वार
ऊंदरा	चूहा	तेड़ाव	बुलाओ
ओटले	चबूतरे पर	दातण	दातुन
एकळा (एकला)	अकेला	धुतारो	धूर्त
करियावर		नणदी	
कांचली	चोली	नोसर्या	
कूआ		पीयर	मायका
कब्जो	जाकेट	पछवाड़े	
कंकोतरी	कुंकुम पत्रिका	बखाण	वर्णन, भाषण
गाळ	गाली	बाजोट	काष्ठ—वेदिका
गोद		बेनड़ी	बहिन
गोवाल (मा—गुवाल)	ग्वाल	बींटी	अंगूठी
गोदड़ा		मोड़	मुकुट

वाक्यों की समानता :—

राम राम करी ने   कड़ा बोड़ा नीपजे

गाम छोडी ने चाली	घणा मास भटक्यो
शिरामण करवा गई	संचावाली कोई पूतळी
तळावनी पाळे	पांच बरस बीती गया
मान पान थी [1]	

लोकगीत—

गीतों में प्रसंग, भावना आदि के साम्य के साथ अनेक शब्दावलियों का एक-समान पाया जाना, भाषा-सम्बन्ध की अविच्छिन्न परम्परा का परिचय देता है। मालवी और गुजराती गीतों में भाव और भाषा की समान-रूपता का तुलनात्मक दृष्टि से परिचय प्राप्त करने के लिए निम्न-लिखित उदाहरण पर्याप्त हैं:—

मालवी	गुजराती
१. लींप्यो चूप्यो म्हारो आंगणो	लींप्यू ने गंप्यूं मारू आंगणो
दूधारा पीवा वाला दोजी	पगली नो पाडनार द्योने रन्नादे
ढोल्यारा पोढनवाला सुवावणा	दळणां दळी ने ऊभी रही
पालनारा पोढनवाला दोजी	पगली नो पाडनार द्योने रन्नादे
थाल्यांरा जीमण वाला अत घणां	रोटला घड़ी ने ऊभी रही
तासक रा जीमणवारा दोजी	चान कीनो मांगनार द्योने रन्नादे

—रढ़ियाली रात, पृष्ठ ८०-८१, भाग १.

२. मेंदी बोइ खेत में	मेंदी तो वावी माळवे
उगी बालू रेत में	एनो रंग गियो गुजरात
छोटो देवर लाड़लो	मेंदी रंग लाग्यो रे

१. सौराष्ट्रनी रसधार, भाग १ से उद्धृत।

मालवी	गुजराती
ऊं मेंदी को रखवाल छोटी नणदल लाड़की वा मेंदी चूं टण जाय —**मालवी लोक-गीत** पृष्ठ ४१.	नानो देरीडो लाड़को ने कांई लाव्यो मेंदी नो छोड —**रढ़ियाली रात, १।१७.**
३. चटक चांदनीसी रात ओ गोरी तो रमवा नीसरिया जी म्हारा राज । रम्यां-रम्यां घड़ी दोइ रात ओ सायब तेड़ो मोकल्योजी म्हारा राज ।। मानो मानो मोटा घर की नार ओ घरे चालो आपणा जी * म्हारा राज ।।१।।२२१	आवी रूडी अंजवाळी रात राते तो रमवा सांचरिया रे मारा राज । रम्यां—रम्यां पोर बे पोर सायबो जी तेड़ा मोकले रे मारा राज ।। घेरे आवो घरडाणी नार अमारे जाऊं चाकरी रे मारा राज । —**रढ़ियाली रात,** पृष्ठ १।३५
४. बीरा म्हारे लेवाके आया आछा आछा सगुण विचारिया ओ राज । जद म्हारा बीरा कांकड़ आया बागांरी दूब हरियाइ ओ राज जद म्मारा बीरा द्वारे आया द्वारे १।२१०	दादा धीडी दखिआं बीर ने आणे मैल्य मलूगर आंबलीयों . वीरो आयो सीमडी ए सीमुलेरे जाय मलूगर वीरो आव्यो सरोवरिये **रढ़ियाली रात,** १।५७–५८
५. ऊंचा हो आलीजा तमारा ओवरा नीची बंदावो पटसाल	ऊंची मेडी ते मारा सायबानी रे लोल ।

***लेखक का हस्त –लिखित गीत संग्रह भाग १, गीत क्रमांक २२१**

मालवी	गुजराती
राजा रा मेला में सारस— रमीरया **मालवी लोक गीत, पृष्ठ ११.**	नीची नीची फुलवाडी झुकाझूक हुं तो रमवा गई थी रे मोती बाग मां —रढि. भाग २, भूमिका पृष्ठ १८
६. बांगा में बाजे जंगी ढोल मेर में बाजे सरनारी· आयो म्हारो माड़ी जायो बीर चूनड लायो रेशमी —३।७	वाग्यां वाग्यां जंगीना ढोल शरणायुं वागे रे सरवा सादनी उडे उडे अबील गुलाल दारुडो उडे रे मोंघा मोलनो —चूंदड़ी २।२७
७. चांद गयो गुजरात हिरणी ऊगेगा	वीरा चांदलियो ऊग्यो ने हरण्यू आथमी रे —चूंदडी १।५६
८. गाजो नी गड़ल्यौ रे म्हारी माड़ मेवलो नी बरसियो म्हारी माई मेवली नी बरसियो आंगण में कीचड क्यो मच्यो ——१।५०	कांई मेहुलिया नी बरसिया कांई बीजलडी नी झबकी रे कांई वाहोलिया नो वाया रे कांई आवडला ने आवडां ——चूंदड़ी १।४०
६. सन्देशबाहक लाल परेवा उड़ उड़ रे म्हारा परेवा नगर बधावो दीजे रे। गांवनी जाणूं गांवनी जाणूं नाम नी जाणूं किना घरे दूं बदावो जी **—मालवी लोक-गीत, पृष्ठ १४.**	**६. सन्देशवाहक भ्रमर** डूंगर कोरी ने नीसरियो भमरो जाजे रे भमरा नोत रे। गाम न जाणूं बेनी नामन जाणूं किया बा रायां घेर नोत रे **—चूंदड़ी २।३२**

व्याकरण-सम्बन्धी प्रवृत्तियाँ—

—गुजराती में 'श' की ध्वनि तालव्य है, किन्तु मालवो में उसका उच्चारण दन्त्य 'स' के रूप में किया जाता है। सौंधवाड़ी (मालवी का एक भेद) में 'स' के स्थान पर 'श' का उच्चारण भी होता है।

—गुजराती में 'ब' का उच्चारण 'व' किया जाता है, किन्तु मालवी में वैसा नहीं होता।

गजराती	मालवी	गुजराती	मालवी
वात <	बात	वीती गया <	बीती गया
वीणी चूंटी <	बीणी चूंटी		

—शब्दों के अन्त में 'ड' जोड़ने की प्रवृत्ति दोनों में समान-रूप से पाई जाती है।

जोशीडा < जोशीड़ा	माडी < माड़ी (मायड़ी)
तलावडी < तलाव.ी	

—गुजराती में 'ड़' को 'ड' ही लिखा जाता है:—

—मूर्धन्य 'ळ' ध्वनि का दोनों में ही प्रयोग होता है।

—इसी तरह सम्बन्ध-सूचक परसर्ग के लिए 'ना' 'नी' 'नो' 'केर' केरा केरी आदि का प्रचलन भी उल्लेखनीय है।

—और के लिए, 'ने' 'अने' अन, नीचे के लिए 'हेठ' शब्दों का प्रचलन दोनों भाषाओं को एक स्रोत से ही प्राप्त हुए हैं।

राजस्थानी और मालवी:—

डा० ग्रियर्सन ने बारबार मालवी को राजस्थानी बोली कहा है। यहां तक कि निमाड़ी को भी वे राजस्थानी बोली का मालवी अंश मानते

हैं।[१] डा० ग्रियर्सन का अनुसरण करते हुए डा० सुनीतिकुमार चटर्जी भी राजस्थानी को मालवा में फैली हुई मानते हैं।[२] इन विद्वानों की मान्यताओं का आधार केवल प्रभाव-साम्य ही हो सकता है। किन्तु यह स्पष्ट किया जा चुका है कि मालवी पर राजस्थानी की अपेक्षा गुजराती का प्रभाव और अंश अधिक स्पष्ट है। गुजराती और मालवी के प्रस्तुत गीतों के उदाहरण से यह स्पष्ट हो चुका है। मालवी और राजस्थानी के गीतों में मार्मिकता और भाषा-परम्परा की एकता का जो स्वरूप अलग से दृष्टिगत होता है, उससे भी उक्त तथ्य का समर्थन होता है। उदाहरण के लिए कुछ गीत प्रस्तुत हैं:—

मालवी	राजस्थानी
१. (रतजगा का गीत)	(गणगौर का गीत)
सीस बागड़ियो नारेल ओ माता	हे गवरल रुडो हे नजारो
सीस बागड़ियो नारेल	तीखो हे नेणां रो
चोंटी माता वासग रमी रया	सीस है नारेला गवरल सरियो
पाटी चांद पवासिया ए माय,	हो जी बड़री वेणी छे वासक नाग

१. 1. Malwi is distinctly a Rajasthani dialect having relation with both Marwari and Jaipuri–Linguistic survey of India, vol IX, Part II, Page 52.
2. Malwi is certainly a Rajasthani dialect, although it now and then show a tendency to shade in to Gujrati and Bundeli
I bid, page 54.
3. Nimadi is really a form of Malwi dalect of Rajasthani— ibid, page 60.

२. राजपूताने के साथ मालवा—इस विशाल भू-भाग पर राजस्थानी फैली है।......राजस्थानी भाषा, पृष्ठ ५।

आंख्या आंबारी फांक ओ माता,	भवां रे हो भंवरो गवरल हे फिरे
भांपण भमरा भमीरया ए माय,	लिलवट आंगळ चार
नाक सुवारी चोंच माता	आंखड़िया रतने जड़ी
ओठ पनवाड़िया छइ रया ए माय	बै'री नाक सूआ केरी चूंच
दांत दाड़मरा बीज माता	मिसरायां चूनी जड़ी
जीव कमलरी पांखड़ी ए माय	बै' रा दांत दाड़म केरा बीज
बायां चम्पा केरी डाळ	हिवड़े संचे ढालियो
मूंगफली सी आंगल्यां ए माय	बइ री छाती बजर किवांड़
पेट पोयर रो पान माता	मूंगफळीसी गवरल आंगळी
हिवड़ो संचे ढालिया ए माय	बइ री बांय चंपा केरी डाल
जांगा देवळरा थंब माता	पिंडलिया रो मलियां
पिंडलियां बेलण बेलिया ए माय	बइरी जांघ देवल केरो थाँभ
पांव रूपारी खान माता	एड़ी चलके गवरल आरसी
एड़ी संचे ढालिया ए माय ।	बइ रो पंजो सतवा सूंठ ।
के थाने घड़िया रे सुनार	किण तने घड़ी रे सिलावटे
के थाने संचे ढालिया रे माय	बंईने क्यां तो लाल लुहार
नइ म्हने घड़िया सुनार रे सेवक	जनम दियो म्हारी मायड़ी
रूप दिया करतार रे सेवक	बई ने रूप दियो करतार ।
जनम दियो म्हारी मायड़ी	—**राजस्थान के लोक-गीत, पृष्ठ**
—१।७१	३९-४१

प्रसंग वधावा	**प्रसंग बधावा**
२. म्हारा सुसराजी गांव का गरासिया	म्हारो सुसरोजी गड़वा राजवी
म्हारी सासू अलख भंडार	सासूजी म्हारा रतन भंडार
म्हारा जेठजी बाजूबंद बेरखा	म्हारा जेठजी बाजूबंद बांकड़ा
म्हारी जेठानी बेरखारी लूम	जेठानी म्हारी बाजूबंद री लूंब
म्हारो देवर दांता नो चूड़लो	म्हारो देवर चूड़ालो दांत रो

म्हारी देवराणी चूड़लानी चोंप	देराणी म्हारी चूड़ला री मजीठ
म्हारी नणदळ कसूमल कांचली	म्हारी नँणद कसूमल कांचली
म्हारा ननदोई कांचलीनी कोर	नणदोई म्हारे गज मोत्यांरो हार
म्हारो नानो कूको हाथनी मूंदड़ी	म्हारो कुंवर घर रो चांनणो
म्हारी कुल–बऊ हिवड़ा नो हार	कुल बऊ ए दिवळे री जोत
म्हारो सायब लिलवट टीलड़ो	म्हारो सायब सिर रो सेवरो
म्हारी सोकड़ पगनी पेजार	सायबाणी म्हे तो सेजारो सिणगार
वारूं बरवड़ तमारी जीब ने ।	म्हे तो वारिया रे बऊजी थारा बोलणे
बरणिया म्हारा मोड़ परवार	
वारूं सासूजी तमारी कूंख ने	लड़ायो म्हारो सो परवार
—चन्द्रसिंह झाला के लेख से	**—राजस्थानी लोकगीत**
वीणा, दिसम्बर १९४४,	**पृष्ठ १११–१२.**

३. प्रसंग बन्याक (विनायक पूजा)

चालो गजानंद जोशी क्यां चालां	हालो विनायक आपां जोसी रे चांल
तो आछा आछा लगन लिखावां	चोखासा लगन लिखासां
गजानंद जोशी क्यां चालां	हे म्हारो बिड़द बिनायक—
कोठा रे छज्जे नौबत बाजे	**—राजस्थान के लोकगीत, पृष्ठ १३३**
नौबत बाजे ने इंदरगढ़ गाजे	
तो झीणी झीणी झालर बाजे	
गजानन्द—**मालवी लोकगीत, पृष्ठ ७२**	

प्रसंग मायरा	प्रसंग माहेरा या भात
४. बीरा म्हारे माथा ने मेंमद लाजो	बीरा म्हारे माथा ने महंमद लाज्यो
म्हारी रखड़ी रतन जड़ाजो जी	म्हारी रखड़ी बैठ घडाज्यो
बीरा रमाझमा से म्हारे आजो	म्हारे रिमक झिमक आजो
बीरा आप आजो ने भावज लाजो	बीरा थे आजो रे भाभी लाज्यो

सरदार भतीजा लारे लाजो जी	नंदलाल भतीजो गोद ज्यालो
बीरा रमाभमा से—	बीरा—
—१।८४	—राजस्थानी लोक—गीत, पृष्ठ २१५

५. धूप पड़े धरती तपे रे बना	धूप पड़े धरत्ती तपै
चन्द बदन कुमलाय ।	म्हारो रंग बनड़ो लुळ लुळ जाय
जो म्हूं होती बादळी रे बना	जो मैं होती बादळी तो
सूरज लेती छिपाय ।।	लेती किरण छिपाय जी
मालवी दोहे—क्रमांक ९९	राजस्थान के लोकगीत पृष्ठ १६५

भाव और भाषा—साम्य के अतिरिक्त मालवी, गुजराती और राजस्थानी लोकगीतों में कुछ रूढ़—पद्धतियों का भी समावेश मिलता है, जिसमें वस्तु—विशेष के लिए निश्चित शब्दावलियों का प्रयोग किया जाता है :—

अश्वारोहण के लिए — 'पलाण' शब्द का प्रयोग
अश्व के लिए — तेजी, लीलड़ी, लाखेणी, घुड़ला
अश्वारोही एवं उसके सौन्दर्य के लिए—पातळियो, असवार
वर के लिए — रायवर, रायजादा
सुन्दर स्त्री के लिए — पद्मणीं
भाई के लिए — वीर, माड़ी जायो वीर, जामण जायो
पति के लिए — नणद बइ रा वीर, बाईजी रा वीर
वस्त्र के लिए — चूंनड़, दखणी को चीर
दिशाओं के लिए — उगमणा, (पूर्व),
आथमणा (पश्चिम)
उद्यान के लिए — चम्पा बाग, नवलख बाग
वृक्षों में आम्र वृक्षका सर्वाधिक उल्लेख ।
पुष्पों में चंपा, केवड़ा, मरवा और मोगरे का वर्णन ।
(जावंत्री के फूल का वर्णन केवल गुजराती लोकगीतों में प्राप्त होता है)

दोनों भाषाओं में कुछ समान लक्षण मिल जाने से ही मालवी, राजस्थानी का अंशभूत स्वरूप नहीं हो सकती । वस्तुतः राजस्थानी और मालवी की लोक–परम्पराओं की एकात्मकता का प्रमुख कारण यह है कि जो जातियां राजस्थान से यहां आकर बसी हैं, उनके संस्कार, गीत और भाषा का प्रभाव यहां की भाषा और परम्पराओं की गहराई के साथ स्पर्श कर गया है । किन्तु उक्त गीतों से मालवी और राजस्थानी की भाषागत प्रवृत्तियां स्पष्ट हो जाती हैं कि दोनों भाषाओं में कुछ समान लक्षण मिल जाने से ही मालवी राजस्थानी का अंशभूत स्वरूप नहीं हो सकती । दोनों की कुछ समानताएं और भिन्नताएं स्पष्ट हैं ।

समानताएं एवं भिन्नताएं—

—शब्द के आद्य-स्वर अकार का राजस्थानी में 'ई' उच्चारण होता है—

जिण (जन) सिरदार (सरदार)
मिनख (मनुष्य) हिरण (हरिण) चिमकणा (चमकना)

मालवी में राजस्थानी की यह प्रवत्ति नही है । सरदार, मनख (मनुष्य) जण अथवा जन (जन) उच्चारण होता है ।

—मालवी और राजस्थानी में 'इ' और 'उ' के स्थान पर 'अ' का उच्चारण होता है ।

दन (दिन) मालम (मालूम) मनख (मनुष्य) मलाप (मिलाप)

—'ळ' और 'ण' की ध्वनियां, सिन्धी, मराठी, गुजराती और उड़िया की भांति, राजस्थानी और मालवी में भी विशिष्ट ध्वनियां हैं ।

—राजस्थानी के एक वचन में निम्नलिखित सर्वनामों के तिर्यक् रूपों में नासिक्य ध्वनियों का आगम होता है ।

इ, इण, अणी, उण, ऊं, वणी

मालवी के इन शब्दों में अनुनासिकतो नहीं होती ।

—राजस्थानी में "ह" ध्वनि का उच्चारण स्पष्ट होता है। मालवी में "ह" ध्वनि का या तो लोप हो जाता है, या उसका स्थान कोई स्वर ले लेता है।

मालवी	राजस्थानी
केणो	कहेणो
रयो, रियो	रह्यो
सयो	सह्यो

बुन्देली प्रभावः—

बेतवा नदी मालवा की पूर्वी सीमा को निर्धारित करती है। बेतवा का संलग्न प्रदेश बुन्देली का क्षेत्र है। भेलसा जिले का पश्चिमी भाग, भोपाल एवं उमठवाड़ की बोली पर बुन्देलों का सीमावर्ती प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। मालवी में तमखे (तुमको), म्हखे (मुझको), ओखे (उसको), ओको (उसका) आदि प्रयोग बुन्देली से प्रभावित है। कुछ क्रिया पदों पर बुन्देली का प्रभाव लक्षित होता है।

गओ हतो (मा. गयो थको)
ओखों (ऊके, ऊखे)
तोखों का करने है (तमख कँई करनो)

इसी भांति लोक-गीतों पर भी बुन्देली का प्रभाव देखा जा सकता है।

१. देवर मोये पानी पिलाव
बन में प्यास लगी।
नइ कुवा नई बावड़ी रे
नइ समुन्द तलाब
ठाड़ो लछमन सोच. करत है
बन में जल कां से लाव[1]

---

१. वही १।२५३

२. या मटकी सोरमजी से भरिया
भरत भरत लागो तड़को
यो हार टूट्यों नवसर को
सासू लड़ता म्हारा सुसरा लड़त हे
जेठन लड़त परघर की
हार के कारणे सायब लड़त हैं[1]

मराठी का प्रभाव:—

राजस्थानी और बुन्देली तो हिन्दी की उप-भाषाएं होने के कारण मालवी से सम्बन्धित हैं, किन्तु मराठी का प्रभाव विचारणीय है। मालवी पर मराठी का प्रभाव प्रत्यक्षतः ३०० वर्षों से अधिक नहीं हो सकता। मराठी भाषा के अनेक शब्द मालवी में इस तरह खप, पच गये हैं कि उनको अलग से पहिचानना कठिन है। विशेषतः मध्यमवर्गीय परिवार एवं नगर के लोगों की भाषा में इन शब्दों का प्रचलन है! निमाड़ी पर भी मराठी का प्रभाव अधिक स्पष्ट है। मालव के ग्रामीण क्षेत्र में मराठी की अपेक्षा गुजराती का प्रभाव है। व्यवहार की—बोलचाल की मालवी में प्रचलित मराठी के कुछ शब्द दिये जा रहे हैं, जिससे वस्तु-स्थिति स्पष्ट हो सकेगी, क्योंकि परम्परागत लोकगीतों में मराठी के शब्दों का प्रयोग नहीं मिलता।

मालवी में प्रचलित मराठी के कुछ शब्द:–

	हिन्दी अर्थ
उभा राहिला : ऊबो रयो, (मा)	
उन्दीर : ऊंदरो (मा)	चूहा
कुत्रा : (कुत्रा, कुतरा)	कुत्ता
कलश	
कब्जा	

१. लेखक का लोक गीत संग्रह, भाग ३।१३३

कवाड (कवाड़, किंवाड़)
खात्री
चौकशी
गल्ला (बिक्री के लिये पैसे)
दगड़ (दगड़ा) पत्थर
धजा ध्वजा
दुबळा
बडील : बड़ील (मा)
संतखाना पखाना
शालू (साळू)
नारल (नारेल-मा)
नथनी
बांगड़ी (बंगड़ी)
भरतार
मंदील जरी की रेशमी पगड़ी
माणुस (मनख-मा)
माहिती जानकारी
रहिवास (रेवास रहेवास-मा)
रंगीला, रांडपण, लाड़की, भांड्सा (हांडा-भांडा करना)
वाट, सावली (सांवली) आदि।
सइ सखी
शेंबूड (मा–सेबड़ा) श्लेष्मा

(निमाड़ी सिमुल)

सांजड (सांज सांजड़ली) संध्या
शिरणी (मा–सिरणी) मिठाई
हांक मारणे (हांक पाड़नो, हांक मारना)

चतुर्थ अध्याय

(मालवी का स्वरूप और उसके उपभेद)

(अ) मालवी का क्षेत्र-विस्तार एवं उपभेदों का विश्लेषण।
आदर्श मालवी का प्रश्न।
मालवी के सामान्य लक्षण।
कुछ भाषागत उदाहरण।
मालवी कविताएँ।

(आ) रांगड़ी या रजवाड़ी।
रांगड़ी की प्रवृत्तियां।
कुछ भाषागत उदाहरण।

(इ) सौंधवाड़ी।
सौंधवाड़ी की सामान्य प्रवृत्तियां।
भाषागत उदाहरण–दो गीत।

(ई) उमठवाड़ी।
उमठवाड़ी के सामान्य लक्षण।
कुछ भाषागत उदाहरण।

(उ) निमाड़ी।
निमाड़ी के मुख्य लक्षण।
भाषागत उदाहरण।

मालवी का क्षेत्र विस्तार एवं उपभेदों का विश्लेषण

मालवी के क्षेत्र विस्तार के सम्बन्ध में विवेचन किया जा चुका है। डा. ग्रियर्सन एवं अन्य विद्वानों ने पूर्व मध्य-प्रदेश के क्षेत्र छिंदवाडा, हुशंगाबाद एवं बैतूल आदि में बोली जाने वाली मालवी का उल्लेख किया है। किन्तु उसके विकृत एवं मिश्रित रूप का भी उन्होंने इसी संदर्भ में उल्लेख किया है। विस्तृत जानकारी के अभाव में उक्त तथाकथित मालवी पर यहां विचार करना अनावश्यक होगा। स्थूल रूप से मालवी का निम्न-लिखित क्षेत्र ही विचारणीय है।

पूर्व:—राजगढ़, शाजापुर के जिले एवं भोपाल का क्षेत्र।
केन्द्रस्थ (मध्यवर्ती):—उज्जैन, देवास और इन्दौर जिले।
पश्चिम:—रतलाम-भाबुआ जिले का क्षेत्र।
दक्षिण-पश्चिम:—'धार' एवं निमाड़ जिले के कुछ भाग।
दक्षिण:—निमाड़ का सम्पूर्ण क्षेत्र।
उत्तर:—मन्दसौर जिला।
उत्तर-पूर्व:—कोटा का दक्षिणी भाग एव झालावाड़ का क्षेत्र।

शुद्ध मालवी का क्षेत्र उज्जैन, इन्दौर और देवास ही हो सकता है। ग्रियर्सन ने उज्जैन क्षेत्र की मालवी को ही स्टेन्डर्ड माना है। इसके पूर्व १९वीं सदी के प्रथम चरण में ईसाई मिशनरी केरी, मार्शमन एवं वाड आदि विद्वानों ने ईसा के सम्बन्ध में लिखी हुई पुस्तक 'नये नियम' का जब मारवाड़ी, मेवाड़ो और जयपुरी आदि बोलियों में अनुवाद किया तब मालवा क्षेत्र की बोली में जो अनुवाद प्रस्तुत किया है, उसे 'उज्जेणी' या मालवी नाम दिया है[1]। अतः मध्यवर्ती मालवी को प्रमुख मानकर

१. डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी—राजस्थानी भाषा, पृष्ठ ७.

व्याकरण सम्बन्धी यत्किंचित् विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए ही उपभेदों का निर्धारण करना उपयुक्त होगा।
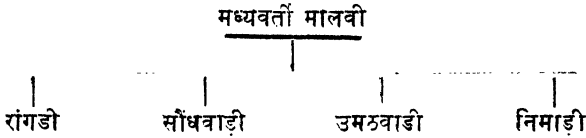
आदर्श मालवी का प्रश्न

जीवन के सामान्य सम्पर्क में आज की यांत्रिक सभ्यता से आबद्ध होकर मनुष्य अपनी भाषा को शुद्ध, यानी बाहरी तत्वों से अछूता नहीं रख सकता। डा० परमार ने उज्जैन की मालवी को आदर्श माना है। जहां तक नगर का प्रश्न है, यहां शुद्ध मालवी का मिलना कठिन है, और ग्रामीण क्षेत्र में भी कई रजपूती ठिकाने हैं, जहां रांगड़ी का प्रभाव अधिक दृष्टिगत होता है। अतः आज हम आदर्श या असली मालवी की बात नहीं कर सकते। मध्यवर्ती मालवी का क्षेत्र जिसका हम निर्धारण करते हैं, उसमें भी यदि रांगड़ी की कुछ प्रवृत्तियां लक्षित होती हैं, तो वह स्वाभाविक ही है। यहां प्रयोजन इतना ही है कि हमें मालवी की उन प्रवृत्तियों पर विचार करना है, जो समग्र रूप से सम्पूर्ण क्षेत्र में पाई जाती है। विभेदात्मक स्थिति तो विश्लेषण की वस्तु है, फिर भी मध्यवर्ती मालवी के क्षेत्र में एकरूपता भी हमें अवश्य मिलेगी।

मालवी के सामान्य लक्षण

—सामान्यतः आकारांत शब्द मालवी में ओकारान्त होकर एक वचन के द्योतक होते हैं। दुखड़ो, घोड़ो, टेगड़ो, टापरो धुंवाड़ो, कागलो, खानो पीनो, आनो–जानो (आणो–जाणो), आदो–आखो मईनो, सासरो, मासरो आदि।

—यह ओकार–बहुल प्रवृत्ति मालवी में अधिक व्यापक है।

—यदि आकारान्त शब्द का प्रयोग होगा तो वह बहुवचन का सूचक होता है। राजस्थानी की तरह मालवी में भी 'ऐ' और 'औ' ध्वनियों का उच्चारण 'ए' और 'ओ' होता है।

है > हे	चैन > चेन	और > ओर
गौरी > गोरी	ठौर > ठोर	

—इसी तरह 'इ' और 'ई' का उच्चारण 'अ' ध्वनि में परिवर्तित हो जाता है:—

दिन > दन   मिट्टी > मट्टी   हरिण > हरण

—'उ' ध्वनि भी 'अ' में बदल जाती है:—

कुंवर > कंवर   ठाकुर > ठाकर

—महाप्राण ध्वनियों को प्रायः बदल दिया जाता है:—

काढो > काड़ो	भी > बी	दूध > दूद
लीधो > लीदो	अढ़ाई > अढ़ाइ (अड़इ)	

—शुद्ध मालवी में दन्त्य 'न' का मूर्धन्य 'ण' में परिवर्तन नहीं होता। यह प्रवृत्ति मालवी के अन्य उपभेदों में नहीं पाई जाती। उनमें न का ण हो जाता है।

—शब्दों को बहुवचन का स्वरूप देने के लिए 'होन' 'होण' 'होनो' आदि परसर्ग जोड़ दिये जाते हैं:—

नाना होन, नाना होनो   लोग होन

छोरा–छोरी होन   बइरा होन

नेपाली का परसर्ग 'हरू' 'हेरू आदि तुलनात्मक दृष्टि से विचारणीय है।

—इसी तरह बहुवचन सूचक परसर्ग 'ना' का भी मध्यवर्ती मालवी में प्रयोग होता है:—

आदमीना   लोगना   लुगाइना

—संस्कृत भाषा की संयोगान्त प्रवृत्ति के कुछ शब्द भी उल्लेखनीय हैः—

माथे (मस्तक पर) सांते (साथ में)

आदी राते (आधी रात में) घरे (घर में)

—य और ब को ज और व में परिवर्तित कर बोलने की सामान्य प्रवृत्ति भी पाई जाती है।

यजमान > जजमान बात > वात

—'और' शब्द के लिए गुजराती की तरह ने, अने, अन आदि शब्दों का भी प्रयोग व्यापक है।

कुछ भाषागत उदाहरणः—

—क्यों अपण तो निमटी ग्या। नाना म्हे निमटी ने अउँ हो।

अवेरी ने राखूँ बइ। यो बड़ो कुचरांदो हे।

—आया SS भुवराजी ? तम तो आओइ नी बइ,

वा—SS—ओ क्यों नी आवां।

—आग्गोज गयो। आगो जाणदो हो ब्याणजी।

होS, छोरी हुइ ने म्हके बुलइ ज् नी।

वा SS ओ, गीत गावा ने नी बुलाया था ?

ब्याव में यूंज गळो कुन फाड़े।

(उज्जैन, मध्यमवर्गीय ब्राह्मण महिलाओं की बातचीत से १०–६–५२.)

—तम कां रोगा ? इन्दौर में ज् रांगा।

तम की सांत का ? उज्जीण में ज् रांगा पण—

तमारो हमारो कइँ सात।

(—वा जदी। आराम करी लेगा। उने कियो, वा कियो होगा)

अंइ कोइ नी वो बेन बारी। चावे जो करले भइँ।

चिग्या चाबे वा बांगी रांड।

(उज्जैन रेल्वे स्टेशन पर माली जाति की महिलाओं की बातचीत से—
९–७–५२)

ओ नाना याँज् आतो रे। आग लगे थारा खोळा में।
आवो संपत, बइं जा। उबी रे वो छोरी, लागी जायगा।
इन छोरा होण से तो उतरायज् कोनी ।

मालवी की कविताएं:—

१ क्यों साब, तम कां से आया हो ?
हमके भोत भाया हो।
कँई आप बम्बई सेर का हो ?
खेर, कांका बी हो, अबे मालवा में आया हो
ने साँते नवी रकम, ने नवा भाव लाया हो
तो झट करो चलो जरा सांतरा सांतरा ।
ने आया हो तो देखी लो मालवा की जातरा
के अबे यो फागण को मइनो आयो है
ने साते केसूडी को रंग लायो है
जुवार बी खळा में से घर में अइगी
ने गऊं मे किरसाण की कोठी भरगी (भरइगी)
कपास आयो वोकी गाड़ी भरी है
कड़ब की हजार पिंडी खळा में धरी है
वो देखो सामे से सांवतजी अइग्या
ने गुलाबजी का कान में धीरे से कइग्या
के लो क्यों नी। बिना कंट्रोल का मिले है चादरा
ने आया हो तो......................
अबे ई जातरा होन लगी री है
ने बेन होन भइ से यूं कइ री है
के जातरा में बीरा बाजूबंद मोलै दे

ने भाबी से साते चलने की कइ दे
तो रंग रंगीली दोइ जातरा में जावाँगा
ने वांसे मन भावती रकम लावाँगा
के हाती घोड़ा, ने खेलकणा मिले
ने तोता होन पींजरा का मांय बी झूले
गारा का हाती ने लकड़ी की रेल
डमरु का बाजा ने चकरी को खेल
ओहो ! खेलकणा होन से भरिया है आखा चोंतरा
ने आया हो तो……………………

—मदनमोहन व्यास, टोंक खुर्द (देवास)

२. रामाजी रइग्या ने रेल जाती री ।
केणे वाला कइग्या के
रामाजी तो परवारी ग्या था
पण राणी रम्बा सासरे का रोणा
ने पीयर का गीत गाती री
रामाजी रइग्या—
रामाजी राणी रम्बा के ली ने
सात दिन में सासरा से सरक्या
रम्बा उनका सातेज् थी
कइं केणी साब !
मोज में मनी–मन हरक्या
पण काकाजी की बात याद आइं गइ
के गेल्या गांव मेंज् मत पड्यो रीजे
सासरा की मनवार हे ने एक बड़ो परवार हे
कइ चणा का झाड़ पे मत चड्यो रीजै
टीकाराम ने टोंकी ने कियो

कइं जवंइ जइ रिया हो
ठेसन पर ठिकाणे लगो
तम तो अबी यांज् गीत गइरिया हो
पड़ोसी पेमाजी ने पुचकारी ने फेरियो हात माथे
ठेर बेटी ! ठेसन तक हूं बी चलूं साते
रेल नी तो आपकी ने नी म्हारा बाप की है
वा नी रुकेगी ने तम रड़बड़ाता रइजवगा
अने बड़बड़ाता अइजवगा
तम ठेरिया पावणा तमारा मूंडा में लगाम
ने पांव में दावणा
अब छुट्टा हो चलो चाल सरपट ने खाल
जदीज् पचेगो सासरा को माल
हम नी जाणा लोगना केगा के
सासरा की मनवार भाती री
रामाजी रइग्या ने—

—आनन्दराव दुबे (इन्दौर-क्षेत्र)

कवि की पत्नि को कलाप

बगद्या की बइ म्हारी थेली ढूंडी दीजे
ऊका मांय एक कपड़ा की जोड़ मेली दीजे
तूने अभी तक म्हारो कुड़तो धोयो कोनी
ने पजामा को फड़को बी सीयो कोनी
म्हने कइ कइ ने थार से हार मान ली
थने एक नी सुनी सब खूंटी पे तान ली
हां, ने एक बात या के थोड़ा पैसा दइदे
थारा पास नी होय तो पाड़ोसन से उधार लइ दे

पन ऐसी कइं तमारे ताना पींजन लागी री है
तैयारी असी करी र्‌या जने लुटइरी हो जागीरी
एसा कंइ तम लगन चूकी रिया हो
ने तम कइं तारीख पेसी पे जइ रिया हो
मैं कवि सम्मेलन जइ रयो हूं
इका वस्तेज् पैसा मांगी रियो हूं
के लाय लागे तमारा कवि सम्मेलन में
एक बखत जो मिली जाय म्हारा सामे
तो धुरा बिखेर दूं वीका
ने मोगरी से मारी मारी के कूं बोल कूका
तू नीं जाणे बेंडी तू अबी है भोळी
म्हारे घणी कड़्ड़ी लागीरी थारी बोलो
वां गांव का कवि होन आयगा
ने आखी दुनिया के या बतायगा
के कलम चलाने वाला में कितरी ताकत हे
जदेज् तो लोग करे उनकी आकत साकत है
म्हारे नी चाय या नामवरी नी भाय
तमारा आगे में घणी काइ हुइ गइ
तमारा नित का आना जाना कैसा
या बात नी भइ
घर में तम थोड़ी देर ठेरो के नी ठेरो
बैठ्या नी बैठ्या के झटपट गाड़ी घेरो
मै इना घर की दीवाल से बात करूं ।
इना घर में घुटी घुटी के मरूं ।

—हरीश निगम 'तराना'

रांगड़ी या रजवाड़ी

रियासतों के एकीकरण के पूर्व मालवा में राजपूतों के कई छोटे छोटे राज्य थे। इनके साथ ही अनेक जागीरदारी और ठिकानों का क्षेत्र भी काफी विस्तृत था। इन मालवी राजपूतों की परम्परा एवं सम्बन्ध प्रायः राजस्थान के साथ जुड़ा हुआ रहा है। रजवाड़ी—रांगड़ी का प्रवेश तीन सौ वर्षों से अधिक पुराना नहीं है। अतः यह स्वाभाविक ही है कि इन्दौर, उज्जैन, रतलाम, मन्दसौर, शाजापुर देवास आदि जिलों के रजपूती ठिकानों के क्षेत्र की भाषा पर राजस्थानी का प्रभाव परिलक्षित होता है। मालवी और रांगड़ी के क्षेत्र की अलग से कोई सीमा रेखा नहीं बनाई जा सकती। उज्जैन—इन्दौर के ग्रामीण क्षेत्र में मालवी और रांगड़ी सम्मिलित रूप से व्याप्त है! रतलाम और मन्दसौर जिले का भाग शुद्ध रांगड़ी का क्षेत्र कहा जा सकता है। रतलाम के पश्चिम में स्थित झाबुआ का क्षेत्र यद्यपि आदिवासी भीलों से युक्त हे, परन्तु वहां की मध्यमवर्गीय जनता रांगड़ी का ही प्रयोग करती है।

सामान्यतः रांगड़ लोगों की भाषा को ही 'रांगड़ी' कह सकते हैं। 'रांगड़' शब्द उद्भट योद्धा या वीरत्व-व्यंजक राजपूत जाति का सूचक है। मालकम के अनुसार रांगड़ और उनकी भाषा के लिए मराठों द्वारा प्रयुक्त शब्द 'रांगड़ी' घृणा-सूचक है।[1] और आज भी संकीर्ण मनोवृत्ति के लोगों के व्यवहार में मालकम के कथन की सचाई को देखते हैं, तब रांगड़ी की अपेक्षा 'रजवाड़ी' शब्द का उपयोग भी किया जा सकता है। यही दुविधा डाक्टर ग्रियर्सन के समक्ष भी थी और इसलिए उन्होंने मालवी के इस उपभेद के लिये रांगड़ी और रजवाड़ी इन दोनों नामों का ही प्रयोग किया है। रांगड़ी की कुछ विशेष प्रवृत्तियां उल्लेखनीय हैं।

—मेवाड़ी के सम्बद्ध कारक परसर्ग **रा—री** रांगड़ी में भी सामान्यतः

१. **मेमायर्स आफ सर जान मालकम,** भाग २ पृष्ठ १९१

प्रयुक्त होते हैं, जब कि मध्यवर्ती मालवी में **का–की** आदि का प्रचलन है।

—'ण' और 'ळ' की मूर्धन्य ध्वनियां रांगड़ी में विशेष रूप से प्रचलित हैं। मालवी में '**न**' का उच्चारण 'ण' नहीं होता—

रांगड़ी	मालवी	रांगड़ी	मालवी
वेणो	होनो	पाणी	पानी
अपणा	अपना	सुणो	सुनो

—'**स**' के स्थान पर '**ह**' का उच्चारण भी रांगड़ी का एक सामान्य लक्षण है।

—रांगड़ी में भूतकालीन क्रिया '**था**' के लिये '**थको**' शब्द का प्रयोग होता है।

—हूं गयो थको (मैं गया हुआ था)
ऊ आयो थको (वह आया था)
जो थारो मर्‍यो थको भाइ आज जीवतो मल्यो (मळयो)

—कहीं कहीं पर क्रियाओं में गुजराती प्रभाव भी लक्षित होता है।
कीधो, कीदो, लीदो आदि का गुजराती में भी प्रचलन है।
१. यो कइं कीदो २. लाकड़ा को लीदो (एक गाली)

—राजस्थानी की तरह रांगड़ी में भी '**जी**' और '**सा**' परसर्ग का प्रयोग आदर-सूचक होता है।
भाभासा (पिताजी), मामासा (मामा साहब), काकीसा आदि
भइजी, सुसराजी आदि

—कभी कभी नामोच्चारक के अभाव में '**जी**' और '**सा**' का संयुक्त प्रयोग भी होता है।
जीसा म्हने कद कयो (जी साहब मैंने कब कहा)

—रांगड़ी में कर्ण-कटु ध्वनियों का प्रयोग अधिक होता है। राजस्थानी परसर्ग ड़ा—ड़ी आदि का प्रयोग मालवी की मार्दवता को कम कर देता है।

जिमाड़ो, बताड़ो, खवाड़ो, तलावड़ी, रातड़ी, बातड़ी

रांगड़ी के कुछ उदाहरण:—

—दस् बार लीदा नें दस् बार दीदा। मांगा जद् तो मोर।
कोइ॑ काम वाम होगा के यूं ज् मळवा ने जाव ?
काम वाम तो कँइ नी, वणारे बी कोइनी, वणा की बॅयरां पंदरा दन हुआ जदे मरी गी (पुरुष)

—काका की अगा हे ?
हो ऽ ऽ अपणो मन भइ, हउज् यांज् मजे में हां।
मेनत बी करणी पड़े।
च्यां जाय रे भइ ? (स्त्री)
हूं तो थको, तरसा मरू॑, पाणी पावो—(पुरुष)

—घणाइ रोवणा पड़े। झोंटा जुवान बेटा-बेटी नो बाप पण पड़-पड़सो होतो म्हारादिराज।

—असलावदा स्टेशन (उज्जैन) ९—७—५२

—असाड़ी बखत हैं। हवा है। बोल्या बी सइ। जो जाणे ऊ हमजे। जो नी जाणे ऊ गिंवार कइ॑ हमजे। अपणा काइज् दांचो आवे। ऊके कँई ? लुगायां बी कचकच करे। रांदा पोवा करे। यांज् रोटा खावें।

—ला म्हे लूण मरच सेइ खइलूं। नीखादी म्हने वणी बखत्। मूओ रोज का रोज बाखड़ा बांदे। जसो धान खाय वसीज् बुद्दी आवे।

—एकांती हूं तो कांदरी गी। कने कने, छेटी होय तो बात दूसरी।

राम रा होय तो बात मानजो। गऊँ कोइ नी। लुगायां कइं दे। परबारा गऊं आया—नी होय तो म्हारा कनथी रुपया लेलो। दीदो कइँ लेवा ने।

असलावदा स्टेशन (बागरी जाति की वृद्ध महिला)

—वणी बामण के कइं अटक्यो ?

टूटो टापरो। छोर्यां हऊ मोटी मोटी होइ गई हो दा। कांती करी वणां की सगइ। यूं कोरा फाफा मार्या थीं कइं व्हेगा। तूं लीजे के दीजे। आदा के आखा के। यो ऊंकार म्हाराज को टापरो हे। पटाव में वी कागद पानड़ा निकल्या।

—जद हमारा अन्जळ उठ्या तो निकलनोज् पड्यो।

मीणो रेतो थो पछवाड़े।

—अपणे उज्जीण जाणो हे। उज्जीण रांडको को कइं। या तो पर-भोगी है। कइं पया कोड़ी मांगू हूं। घोड़ा गदड़ा से पार नी पड़े।

उन्हेल (कृषक महिलाएं) ६–७–५२

तीज माता की वारतां

एक सउकार थो। जीके सात बेटा था। छे बेटा के तो सासरो थो ने एक की बऊ के पीयर नी थो। जदी है तो भादवो मइनो आयो। तीज माता को दन आयो। सबी के तो पीयर को सातू आवेगा। म्हारे तो कोई बी नीं। कां से सातू आवेगा। जदी वा धणी ने बोली के तम बी कइं करी ने सातू लावो। चोरी जाव ने सातू लाव। वणी है सउकार को अच्छो घर ढूंढ्यो जां खुरपा कड़ई ने धान चणा खूब था। आदी राते सऊकार का घर में ऊने चणा वणा हेड्या ने घट्टी में दळवा लागो। घर का लोग ने घरड़–घरड़ सुणी ने नीचे उतर्या। चोर के पकड़ी लियो। 'अठे वठे वसो, काजळी तीज की हंसी कसो।' अरे भई सूदी तन से बोल। ऊबोल्यो। हम सात भइ हां तो हमारे छे की लुगायां के तो पीयर है अने

म्हारी लुगाई के तो पीयर कोनी तो वा बोली चोरी जाव ने चणा को सातू लाव। जीसे में यां आयो। चोरी करवा नी आयो। सेरक चणा की दाल को सातू लइ जऊंगा। जदी वा तम जाव। हम सातू लावांगा तमारे यां। भादवो मइनो आयो। तीज को दन आयो। मजे में देराणिया के ने जेठाणिया के मणासा भर सातू आयो ने बेस आयो। धूमधाम से अण-पीयरणी के बी सउकार आया। देराण्या–जेठाण्या रीस्यां बळवा लागी के म्हारे यां से तो इत्तो आयोज् नी। सोकेली के पीयर को कितो सातू आयो। याज् वारता अदूरी हो तो पूरी करजो। ने पूरी हो तो मान करजो।

——गीतादेवी (रतलाम) १३–८–५७।

२. आड़ी–बाड़ी:

आड़ी–बाड़ी सोना की बाड़ी, जिमें बेठो तीज माता।
बाड़ी पूजां कइं होय ?
अन होय, धन होय, लाव होय, लछमी होय।
बउ को रांद्यो, धी को परस्यो
दोयते रांदी राबड़ी, पोते रांदी खीर
खाटी लागे राबड़ी, मीठी लागे खीर
बन का बाजी बन में जाजो, काचा पाका वन फल खाजो
त्हाने थांको वन को फल।
म्हाने तीज माता की पूजा करी जीको फल।

—रतलाम। १३–८–५७

सौंधवाड़ी :–

सौंधवाड़ का विस्तृत क्षेत्र शाजापुर जिले की उत्तरी सीमा में संलग्न पार्वती नदी से प्रारम्भ होता है। काला-पीपल के उत्तर का भाग, आगर, सुसमेर, जीरापुर, महिदपुर और तराने के उत्तर का क्षेत्र, चौमेला मण्डी

और गरोठ तेहसील में चम्बल का पूर्वी-दक्षिणी भाग सौंधवाड़ कहलाता है। क्षेत्र-विशेष की बोली के नाम पर ही सौंधवाड़ी को मालवी का एक उपभेद मानना उपयुक्त होगा। वैसे सौंधियों की बसाहट के कारण इस क्षेत्र का नाम सौंधवाड़ पड़ा है। किन्तु यहां केवल सौंधिये ही नहीं रहते। मेर, मीणे, भील, मौघिये आदि लोगों के साथ अन्य कृषक जातियां भी रहती हैं और इनके द्वारा सौंधवाड़ी ही बोली जाती है। सौंधवाड़ का क्षेत्र भी बड़ा विस्तृत है। छोटी काली सिन्ध और बड़ी काली सिन्ध (नदियां) का मध्यवर्ती भाग सौंधवाड़ का केन्द्र-स्थल कहा जाता है और सम्भवतः इस क्षेत्र का नाम दो नदियों के कारण ही सिंधवाड़ा—सौंधवाड़ा पड़ा और यहां के निवासी सौंधिये कहलाये। वैसे चौमेला के सौंधिये अपनी परम्परा मेवाड़ी राजपूतों से जोड़ते हैं [1]। किन्तु कुछ विद्वान सौंधिया शब्द की व्युत्पत्ति संध्या शब्द से मानते हैं, जिसका संकेतित अर्थ होता है मिश्रण। सम्भवतः अनेक वर्ण अथवा जातियों के मिश्रण का या जाति बहिष्कृत लोगों का यह वर्ग होगा [2]। जो भी हो, सौंधवाड़ी पर राजस्थानी, रजवाड़ी, (रांगड़ी) का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है।

सौंधवाड़ी की कुछ उल्लेखनीय प्रवृत्तियां :—

मराठी, सिंधी आदि में प्रचलित मूर्धन्य 'ण' की ध्वनि सौंधवाड़ी में भी लक्षणीय है।

समजणो (समझना) रोणो धोणो (रोना धोना)
कणी, कुण (कौन) राचणी (जिसका रंग उभर जाय)

—सौंधवाड़ी में मालवी 'ब' का प्रायः 'व' उच्चारण होता है।

वात (बात) वनड़ा (बनड़ा) वाट (बाट)

यह प्रवृत्ति गुजराती में पाई जाती है।

१. राजपूताना गजेटियर, भाग २, पृष्ठ २०० ।
२. मेमायर्स ऑफ सरजान मालकाम भाग १ ।

—दन्त्य 'ल' का उच्चारण भी मूर्धन्य 'ळ' होता है।

गळे	(गले)	थाळ	(थाल)
घुंगर माळ	(माल)	पीपळी	(पीपली)

—रांगड़ी की तरह सकार के स्थान पर हकार का प्रयोगः—

हगरा हारू	(सगला सारू)	तीह	(तीस)
हांझ	(सांझ)	हुपनो	(सपनो)
हुवागण	(सुवागण)		

—'भ' का 'ब' उच्चारणः—

भाभी	(भाबी)	शोभ	(होब)

—दिशा-सूचक सर्वनाम में भी सौंधवाड़ी सामान्य मालवी से कुछ अलग ही हैः—

कें ग्यो थो ? (कहाँ गया था) वें ग्यो थो (वहां गया था)

अव्यवस्थितः—

कयांड़ी (कहाँ), अयांड़ी (इधर – यहां), पेलाड़ी (उधर) उल्याड़ी (इस ओर, निकटता-सूचक) मेरे (निकट)।

सौंधवाड़ी के दो लोकगीत :—

१. वनाजी त्हांके घोड़ी के गळे धूंगर माळ
पावां का नेवर बाजणा रे वनड़ा
वनाजी त्हाँका हाथ में हरियो रुमाल
पावां की मेंदी राचणी रे वनड़ा
वनाजी थे तो चड् चाल्या अद् रात
म्हारी हूती नगरी ओजकी रे वनड़ा

—गरोठ श्यामगढ़, ६—७—५२

२. कांकड़ माये पीपळी रे वीरा—

जणी पर जोऊं व्हारी वाट
मांड़ी जायो चूनड़ लावियो
भाबी का भम्मर गेणे मेलजे रे वीरा
पंचा में राखो बाई री होब
माड़ी जायो चूनड़ लावियो
लावो तो हगरा हारु लावजो रे वीरा
नी तो रीजे व्हारे देस
माड़ी जायो चूनड़ लावियो
मेलूं तो थाळ भराय, ओढूं तो हीरा झर पड़े।
नापूं तो हात पचास, तोलूं तो तोला तीह की ॥

—आगर-सुसनेर की ग्रामीण महिलाएं

उमठवाड़ीः—

उमठ या उमट जाति के राजपूतों की बसाहट के कारण मालव के पूर्वी एवं उत्तर-पूर्वी क्षेत्र का नाम 'उमठवाड़' है। इसमें भूतपूर्व मध्य-भारत राज्य के राजगढ़, नरसिंहगढ़, छापीहेड़ा आदि राजपूत-बहुल क्षेत्र के साथ ही खिल्चीपुर, जीरापुर, माचलपुर का पूर्वी भाग भी सम्मिलित है। रजपूती क्षेत्र होने के कारण उमठवाड़ी और रजवाड़ी (रांगड़ी) में विशेष अन्तर नहीं है। केवल दिशा-सूचक शब्दों में ही असामान्य भिन्नता है, जो मालवी के अन्य उपभेदों में नहीं पाई जाती। उमठवाड़ी के ये शब्द उल्लेखनीय हैं, जो उसकी प्रवृति को मालवी के अन्य उपभेदों से अलग करते हैः—

अनांग (इधर) उनांग (उधर)
कनांग (किधर) जनांग (जिधर)
पेलांग (उस पार या उस ओर) ओलांग (इस पार या इस ओर)

—राजस्थान के कोटा राज्य के दक्षिण में उमठवाड़ स्थित है। अतः इस

पर हाड़ोती बोली का प्रभाव भी लक्षित होता है। कोटा के निकट डांग के क्षेत्र की बोली उमठवाड़ी के अन्तर्गत आती है। ग्रियर्सन एवं समीरजी ने उसे डंगेसरी नाम दिया है।

—उमठवाड़ी में 'थ्' और 'ध्' ध्वनि का उच्चारण 'त्' और 'द्' होता है।

हात : हाथ   दूध : दूद   सांत : साथ
रांद्यो : रांधा : पकाया

—'में' परसर्ग के स्थान पर उमठवाड़ी में 'हे' का प्रयोग होता है।

वाड़ा हे (बाड़े में)   घर हे (घर में)

—उमठवाड़ी के पूर्व में बुंदेलखण्ड स्थित है। अतः बुन्देली भाषा का किंचित् प्रभाव भी उसमें पाया जाता है। —लड़त है, करत है, हिटी आयो आदि में बुन्देली प्रभाव लक्षित होता है।

—'क्ष' वर्ण 'क्' और 'ष्' ध्वनियों का सम्मिलित रूप है। और उच्चारण में असुविधा होने के कारण 'क्ष' में निहित 'ष' ध्वनि का लोप हो जाता है।

उमठवाड़ी के कुछ उदाहरण :

१. —ए....हो....तमें कंइ कर रयाँ हो ?
ए....उलांग आजो।

—मैने घणी बखत की के थोड़ो ओलांग
बैठ बी कर पण कना कांइ बात हे
पेलांग इ पेलांग सरके।

—ए अनांग की गली से गयो थो ने
उनांग से हिटी आयो। कइं गमी नी पड़ी
कना-कनांग कइं होयो।

२. चार खुण्या चार बावड़ी रे
चारि पिराले पाट
बटउड़ा ने मन मोयो।
ओच् छोरा हल हाकन्ता थारा कांइ लागे ?
ओच् छोरी हल हाकन्ता म्हारा बाजी लागे
भैंस्यां दुवन्ता थारे कांइ लागे ?
घुड़ला फिरन्ता थारे कांइ लागे ? बटउड़ा........
भैंस्यां दुवन्ता हमारा काकाजी लागे
घुड़ला फैरन्ता म्हारा मामाजी लागे, बटउड़ा........
कचेरी बैठन्ता थारा कांइ लागे
सेरी रमन्ता थारे कांइ लागे, बटउड़ा........
कचेरी बैठन्ता म्हारा मासाजी लागे
सेरी रमन्ता म्हारा वीरा जी, बटउड़ा........
पाणी भरन्ती थारी कांइ लागे रेच् छोरा
रोटी पोवन्ती थारी कंइ लागे ? बटउड़ा........
पाणी भरन्ती म्हारी बेन वो छोरी
रोटी पोवन्ती म्हारी भाबी लागे, बटउड़ा........
माळ जावन्ती थारी काइं लागे
गोबर हेरन्ती थारी काइं लागे
गऊंड़ा काटन्ती थारी काइं लागे।
—काकी, मामी, मासी
जाँसे लायो वइं मेलि आ रे छोरा
थारो सोदो रे परवार हिटी आयो, बटउड़ा—
हूं थने कद लायो वोच् छोरी—
चारि खुण्या को नाम लियो।[1]

१. लेखक का अप्रकाशित गीत-संग्रह, ३।७७.

निमाड़ी :-

विन्ध्याचल और सतपुड़ा के बीच एक अञ्चल में, नर्मदा के उत्तर में, धार और दक्षिण में बड़वानी को लेकर कुछ पूर्व तक फैला हुआ प्रदेश निमाड़ है, जो मालवा का ही ठेठ भाग है। मालव के दक्षिण में स्थित होने के कारण निमाड़ी को हम 'दक्षिणी मालवी' कह सकते हैं। मालवी के रांगड़ी उपभेद की तरह निमाड़ी का विस्तार-क्षेत्र भी अधिक व्यापक है। डाक्टर ग्रियर्सन ने स्पष्ट ही निमाड़ी को मालवी से सम्बन्धित बोली माना है।[1] पर राजस्थानी की उपभाषाओं के क्षेत्र में उसकी गणना करना एक विवादास्पद विषय होगा। निमाड़ी और मालवी में कुछ ऐसी समानताएँ हैं, जो मालवी और राजस्थानी में नहीं देखी जाती। राजस्थानी की अपेक्षा निमाड़ी का मालवीपन अधिक स्पष्ट है। भाषा, लोक-साहित्य और लोक-गीतों से इस तथ्य को प्रमाणित किया जा सकता है। निमाड़ी में प्रचलित एक लोक-गीत मानो स्वयं ही अपनी जन्मभूमि का परिचय देता है :—

म्हारो देश मालवो, मुलक निमाड़, गांवड़ा को छे रहेवास।[2]

गुजराती की सीमा से संलग्न होने के कारण निमाड़ी पर गुजराती का प्रभाव पड़ा है। इसी तरह दक्षिणी सीमा पर स्थित खानदेश है। अतः मराठी की कुछ प्रवृत्तियां भी निमाड़ी में आ मिली हैं। संलग्न प्रदेशों के प्रभाव को देखकर ही डा. श्यामसुन्दरदास ने निमाड़ी को एक 'मिश्रित-भाषा' मान लिया है :—

> 'निमाड़ी बोली कोई स्वतन्त्र बोली नहीं। वह मुख्यतः मालवी के आधार पर बनी हुई एक संकर भाषा है।'[3]

---

१. **लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया**, ग्रन्थ ६, भाग २, पृष्ठ ६०—६१

२. **रामनारायण उपाध्याय :— निमाड़ी लोक—गीत**, पृष्ठ २६ (प्रथम संस्करण)

३. **भाषा-विज्ञान**, पृष्ठ १४५—४६.

किसी भी भाषा पर संलग्न प्रदेश का सम्पर्कजन्य प्रभाव तो पड़ता ही है, किन्तु यत्किंचित प्रभाव उसके स्वरूप को नहीं बदल सकता। निमाड़ी को मिश्रित-भाषा नहीं कहा जा सकता। मालवी-आधार खोजने की भी अलग से कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि निमाड़ी मालवी का ही एक स्वरूप है।

निमाड़ी के मुख्य लक्षण :-

—प्रत्येक अकारान्त शब्द के अन्तिम अक्षर पर जोर देकर उच्चारण किया जाता है।

—कर्ता और अधिकरण के परसर्ग 'ए' के स्थान पर 'अ' का प्रयोग होता हैं।
घर में>घर म, आगे>आग, मकान में>मकान म, उसने>ओ न

—अपादानकारक का परसर्ग 'सी' है।
सबसी बड़ी हऊँ छे।

—अनुस्वार का लोप :-
दांत>दात गंवार>गवार डांट>डाट

—कर्मकारक के परसर्ग 'के' अथवा 'को' के स्थान पर 'ख' का प्रयोग होता है।
मुझको=म्हख, मालवी में म्हके
तुमको=तुमख, तख

—बहुवचन-सूचक 'होण' और 'ना' परसर्ग निमाड़ी में भी प्रचलित हैं।

—वर्तमान काल के लिये 'हे' के स्थान पर निमाड़ी में 'छे' का प्रयोग होता है।

—क्रियापदों में "च" 'ज' 'जे' ग आदि को जोड़ कर विभिन्न रूप बनते हैं।
चलज चलता है। लावजे— लाना (विध्यर्थ)

आवग— आवेगा, जावग— जावेगा जाओगे
मारुज, मारुन— मैं मारता हूं ।

—भविष्य के क्रिया रूपों पर गुजराती का प्रभाव है।

एक वचन	बहु वचन	
मारीस	मारसा	मैं मारुंगा
मारसे	मारसो	यह मारेगा

—धातुओं का मूल रूप उकारान्त रहता हैः—मारणुँ, खाणुँ, कहणुँ ।

निमाड़ी के कुछ उदाहरणः—

१. हम तो म्रांगा आसाज । तमारा पांव देखीलो ने हमारा ।
ऊके तो खोलीच (ज) नी । केरी होण के झाड़ ।
तब्बेत तो मजे म ?
कइँ मुंडा म लार पड़ी रइ छे ।
—महेश्वर (पुरुष) २७।५।५३

—काय म बैठी जावाएं । उनका बदल सबकेज् पैसा दे । इम कइँ । पाव भर लइयायो । ला म्हन दे । बेन हम काल थोड़ीज रांगा । वांज नारियल बी छोड़ी आवांगा । असज चले । नीचेज् छे । नरबदाजी म जिते कंकर उते इ संकर । —महेश्वर (स्त्री)

—नू समान मत धर । ने तू कां लिजाय ? यो म्हारी बात सुणले । हात जोड़ूं या पागड़ी धरूं । ये दो दन कल्ले दादा । यो भइ हे सग्गोज् ।
—धामनोद, कोली जाति (पु०) २८।५।५३

—आपको काँ रेणो ? असा लोग छे । सगपण हुयो के नी ? भाणेज् हुइग्या । आप कइ सको । कल म्हन याँज् कारट डाल दियो इंका मकान म । —दाऊ गांव (ठाकुर पु०)

—चार चक्क चलज । दो भक्क चलज ।
आग नता चलज । पीछे गोप चलज —एक पहेली (हाथी)

—माय होरा !

बापसी जादा तमारो बेटा बेटी पर प्यार रहेज । बाप कदी मारज तो बालक रड़तो माय पासज् आवज । पण माय मारज तो छोरो बाप पास नी जावज । छोरा छोरी क माय सी जादा कोई हितू नी । एका वास्त आपरण छोरा छोरीन ख आदमीन का भरोसाज पर मत रहण देओ।

२. दूध पकी थरी ने म्हारी बारतां खरी ।

एक राजो थो । ऊंके सात राणीन थी । ऊंका घर कोइ छोरी छोरान नी होय तो ऊ गयो—दर कूच्–दर मुकाम करतो गयो एक म्हाराज के वां ।

"क्यों बेटा कसो आयो ?"

—'म्हाराज म्हारा या कंइ बाल बच्चो नी होय तेकां लेण हऊं आयो ।'

'थारी कित्ती राणी छे ?

—'म्हारी सात राणीन छे ।'

"लो यो सोटो लइ जा वां एक झाड़ छे ऊना झाड़ म फल लग्याज छे, लालच मत करज ।"

राजा न सात चक्कर मारचा तो सात फल पड़ीं गया । ऊन लालच करी । एक झोड़पो अरू मारचो तो फल बी टंगइ गयो ने ऊ आदमी बी टंगइ गयो । ऊ चिल्लायो । म्हाराज न ऊंके हेड्यो अने सात फल तोड़ीन घर आयो । सात फल राणीन ख दइ दिया । छै राणीन वी फल उत्ती बखतज् खई लिया—एक काम म रई गई । आदो फल तो ऊंदरा खई गया ने आदो ऊने खायो । छः राणीनख तो पूरा बच्चा हुया । उनी राणी ख आदो बच्चो हुयो तो ऊंको नाम 'आद्यो-दाद्यो' पाड़ दियो ।

अंजड़ ३०–५–५३

पंचम अध्याय

(मालवी का विस्तृत विवेचन)

(अ) ध्वनि-तत्व की दृष्टि से विचार ।

* मालवी की ध्वनियां ।
* स्वर * व्यंजन ।
* ध्वनि-विकार : परिवर्तन ।
* मनोभाव-व्यंजक एवं क्लिक-ध्वनियां ।

(आ) रूप–तत्व ।

* संज्ञा ।
* ओकारान्त शब्द ।
* तद्भव शब्द ।
* व्यंजनान्त संज्ञा-पद ।
* मालवी के विभिन्न संज्ञा-शब्द ।
* दिशा-स्थान-सूचक अव्यय-शब्द ।
* प्रत्यय, * उपसर्ग, * कारक * समास ।

(इ) विशेषण ।

(ई) सर्वनाम ।

(उ) क्रियापद ।

ध्वनि-तत्व की दृष्टि से विचार

हिन्दी की ध्वनियों को देवनागरी लिपि में लिखा जाता है, किन्तु बोली जाने वाली अनेक भाषा और बोलियों में ऐसी ध्वनियां भी हैं, जिनकी उच्चारणगत विशेषताओं के कारण हिन्दी के निर्धारित स्वर व्यंजनादि में अंकन नहीं किया जा सकता। हिन्दी प्रदेश की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं का इस दृष्टि से सूक्ष्म अध्ययन भी किया गया है और ध्वनि-तत्वों का विश्लेषण कर नवीन चिन्हों का निर्धारण भी हो चुका है, जिनका देवनागरी में प्रयोग नहीं होता। ब्रज, अवधी, भोजपुरी आदि का ध्वनि-विज्ञान की दृष्टि से कुछ विद्वानों ने विस्तृत अध्ययन किया है। मालवी की ध्वनियों का अङ्कन, ध्वनि-श्रेणियों का निर्धारण एवं सांगोपाङ्ग विश्लेषण करना अभी मेरे लिए सम्भव नहीं है, फिर भी चलते चलते किंचित् अध्ययन के आधार पर जो समझा जा सका है, उसी को प्रस्तुत करना यहां प्रयोजनीय है।

सन् १९५७ में आगरा विश्व-विद्यालय एवं 'समर स्कूल आफ लिंग्विस्टिक', पूना की ओरसे देहरादून में आयोजित अध्ययन-अध्यापन-सत्र में अमेरिकाके भाषाशास्त्री डा० गम्फर ने कुछ मालवी और मेवाड़ी शब्दों का अङ्कन किया था। मालवी के अध्ययन का आधार मेरे द्वारा उच्चरित ध्वनियां ही थीं। चेष्टा यह की गई थी कि शब्दों के उच्चारण सहज और स्वाभाविक हो। फिर भी जनसाधारण के उच्चारणों की यथास्थिति का ध्वनि-रेखांकन यन्त्र की आवश्यक सहायता से निर्धारण किया जाना आवश्यक होगा।

मालवी के कुछ शब्दों के ध्वनि-अंकन का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

कँरँमदी	खँवो	कॅनपटी	हतेळी
गळो	अंगूठों	पँगँतळी	पगल्या
कॅड़ई	लॅंड़ई	बॅळॅइ	तॅळइ
रँगीला	हॅटीला	बॅड्ड़ों	अॅई
वॅइॅ	कंइॅ	पॉतलों	अॉगोज् गयों
आग्गो बॅळ	ब्बॉराजी	अाँरिग	अॉड़ो
आड़ें	अाँख्यां	हॉर	छोॅरा
छोॅरी	अँडारो	रंखॅड़ी	कॅड़ों
कँदोरो	कॅड़ी	खोळॅ	खोड़
लारे	थोबरों	नॉख्यों	बोलो
खोलो	होॅठॅ	अॅनूवॅट	काम्
धाम्	नाम्	झॉड़	झॉड़े
काळ	पाल	डाळ	माथों
दांत	पागड़ी	खारो	किसनो
छेटी	मॅति	सेजॅ	फेॅटो
केस	पेट	एॅड़ी	अइग्यो
बाड़ी	लाड़ी	भाँपॅरा	नाड़
सीॅस	जीॅब	लिलाट	लिलवॅट
हिव्ड़ा	खावे	भावे	न्हावे
गावे	म्हनें	महके	बळेॅ
बालूड़ा	सालूड़ा	कुअों	कुवॅलों
कूड़ा	कूड़ों	हूॅ	थूॅ
इॅठि	पेड्ड	मेंमँदँ	बाजूबँदँ
पोचीॅ	होदों	ओॅड़नी	सॉकळो
गोॅखरू	बोॅर		

उक्त ध्वन्यांकन के अनुसार मालवी में स्वरों की स्थिति निम्न लिखित है:—

	अग्र	मध्य	पश्च
संवृत	इँ इ ई	—	उ ऊ
अर्ध संवृत	ए		ओँ ओ
अर्ध विवृत	एँ	अ	अँ
विवृत	ऑ		आ
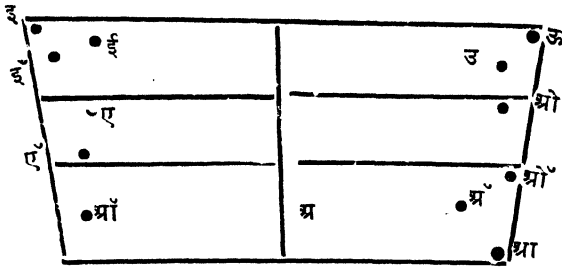
स्वरः—

—मालवी में अर्ध-विवृत मध्य-स्वर ह्रस्व 'अॅ' के उच्चारण का प्राचुर्य है:—

कॅरॅमदी	कॅनपटी	गॅळो	पॅगतॅली
पॅगल्या	हॅठीला	लॅड़ई	कॅडॅई
तॅळॅई			

—ह्रस्व 'अ' का शब्दारम्भ अथवा शब्दान्त में बहुत ही कम प्रयोग मिलता है:—

अॅडारो,   अॅइँ

—ह्रस्व 'आ' एवं दीर्घ 'आ' भी प्रायः शब्द के मध्य में प्रयुक्त होते हैं।

—मालवी के शब्दान्त में 'ओ॒' –'ओ' ध्वनि का प्राचुर्य है।

—'ऋ' ध्वनि मालवी में नहीं है। इस ध्वनि की 'रि' या 'रु' से पूर्ति करदी जाती है।

ऋषि > रुसी या रिसी   ऋक्ष > रींछ

—'अ' का 'इ', 'ए' में परिवर्तन:—

अन्धेरा > इन्दारा   अहिवात > एवात

व्यंजनः—

प्रस्तुत चार्ट में उच्चारण-स्थान एवं उच्चारण-विधि का निर्धारण किया गया है:—

२. व्यंजन :

उच्चारण-विधि		उच्चारण-स्थान							
		द्वयोष्ठ	दंत्योष्ठ	दंत्य	वर्त्स्य	मूर्धन्य	वर्त्स्य-तालव्य	तालव्य	कंठ्य
स्पर्श	अल्पप्राण	प् ब्		त् द्		ट् ड्		क्	क् ख्
	महाप्राण	फ् भ्		थ् ध्		ठ् ढ्			ग् घ्
स्पर्श-संघर्षी	अल्पप्राण				स्		श्	ज् च्	
	महाप्राण							छ् झ्	
पार्श्विक	अल्पप्राण				ल्	ळ्		ल्	
	महाप्राण				ल्ह्				
अनुनासिक	अल्पप्राण	म्			न्				
	महाप्राण	म्ह्			न्ह्	ण्			ङ्
लुंठित	अल्पप्राण								
	महाप्राण								
उत्क्षिप्त	अल्पप्राण				र्				
	महाप्राण				र्ह्	ड़्			
सप्रवाह अर्ध-स्वर		व्						य्	

ध्वनि-विकार—

स्वर—स्वर लोपः—

अ—आदि-स्वर का लोप

अनाज नाज

अ—मध्य-स्वर-लोप

बलदेव बल्देव

इ—परिवार परवार कपिला कपला

हिडिम्बा हड़म्बा

उ—मनुहार मनवार

अ—अंत्य-स्वर-लोप

हम्, तम्, घर्, चल्, काम्, धाम् आदि

आगम

आदि-स्वर का आगम या दीर्घीकरणः—

पड़ोसी	पाड़ोसी	बन्दर	बान्दरा
चमड़ी	चामड़ी	कम्बल	कामळ
ककड़ी	काकड़ी	लकड़ी	लाकड़ी
मकड़ी	माकड़ी	डब्बी	डाबी
कपड़ा	कापड़ा		

व्यंजन

—मालवी में 'क्ष' का प्रयोग नहीं होता। 'क' और 'ष' की यह मिश्रित ध्वनि 'छ्' में परिवर्तित हो जाती हैः—

लक्ष्मी लछमी

—'ह' का 'व' उच्चारणः—

मनुहार मनवार, लुहार लुवार, पाहुना पावणा

—'ह' का 'इ' या 'ए' उच्चारणः—

महिना मइना, कहानी कैणी, गहरा गैरा

मन ही मन मन इ मन, ठहर ठेर

—'ह' का 'य' में परिवर्तनः—

मोहन माल। मोयन माला, मन मोहा मन मोया

—'म' का 'ड' में परिवर्तनः—

मेंढक डेंडक

—'ढ़' ध्वनि का प्रयोग बहुत कम होता है।

ढांकणी, ढपली, ढेड़ (नीच जाति) आदि कुछ शब्द ही मालवी में मिलते हैं। 'ढ़' का प्रायः 'ड' ही उच्चारण किया जाता हैः—

चढ़ाई चड़इ, पढ़ाई पड़इ, अढ़ाई अड़इ

—'ष' एवं 'श' के स्थान पर 'स' का प्रयोग होता है। 'ष' ध्वनि का मालवी में लोप हो गया है।

—अनुनासिक वर्त्स्य 'न' प्रायः 'ण' में परिवर्तित हो जाता है। विशेषतः मालवी के रांगड़ी रूप में।

पाणी—छाणी, राणी, पेवाण

—'य' का 'ज' उच्चारणः—

यजमान जजमान, युद्ध जुद्द, योद्धा जोधा

—महाप्राण से अल्पप्राणः—

भ् ब् —रम्भा रम्बा, खम्भा खम्बा

थ् त् —हाथ हात, साथ सात

ध् द् —अंधा अंदा, आंदा, आंदी

—मूर्धन्य 'ण' और 'ल' की विशेष ध्वनियां हैं। वर्त्स्य 'ल' के मूर्धन्य उच्चारण से शब्दों के अर्थ बदल जाते हैंः—

गाल (कपोल) गाळ (गाली)

खाल (चमड़ी)	खाळ (नाला)
खोळो (गोद)	खोलो (खोलना क्रिया का आज्ञार्थक रूप)
गोल (वृत्ताकार)	गोळ (गुड़)
माल (धन-पैसा)	माळ (जंगल)
बाल (शिशु,) (केश)	बाळ (जला)
काल (कल)	काळ (मृत्यु)

व्यंजन-लोपः

मालवी में मध्य-व्यंजन और अन्त-व्यंजन लोप के अधिक उदाहरण मिलते हैं। आदि व्यंजन-लोप के एक-दो शब्द ही मिलेंगे।

स्टेशन टेसन, स्मशान मसाण

मध्य व्यंजन :—

ह—साहब	साब	कहानी	कैणी
कहेगा	केगा	अहिवात	एवात
र—कार्तिक	कातिक		
ध—योद्धा	जोधा		

अन्त व्यंजन लोप:—

य—भाग्य भाग्, पुण्य पुन्, धन्य धन्

मनोभाव-व्यंजक एवं क्लिक-ध्वनियां :—

शब्द हमारी वाणी के वाहक हैं, और जीवन के सामान्य व्यवहार में वाणी मनुष्य की आशा-आकांक्षाओं के साथ अनेक मनोभावनाओं को प्रस्तुत करती है। अपनी आवश्यकताओं को समाज के सामने अभिव्यक्त करने के लिए हमारे मुख से जो ध्वनियां निकलती हैं, वे शब्दों में आबद्ध होकर कुछ सार्थकता ग्रहण कर लेती हैं। कभी-कभी ऐसी ध्वनियां भी

हमारे मुख से निकलती हैं, जो अन्य व्यक्ति के लिए निरर्थक होते हुए भी हृदय के उल्लास, दु:ख, पीड़ा आदि भावों को प्रगट कर देती हैं। ऐसी ध्वनियों को लिपिबद्ध करने का प्रयास आज तक कोई भी नहीं कर सका है। हृदय के आवेग की विभिन्न परिस्थितियों में भावनाओं का जो ज्वार उमड़ता है, उसको हम किसी भाषा की सार्थक शब्दावली में पूर्णतः नहीं बांध सके हैं। विस्मयादिबोधक ध्वनियों को अंकित करने के लिए संसार की सभी भाषाओं में कुछ शब्द-विशेष निर्धारित अवश्य हैं:—'अहो', 'अहा', 'धिक्', 'हुश्', 'हिस्', 'ऊफ्', 'आह' आदि शब्द हृदय के भाव विशेष को प्रगट करते हैं। विशेष भावों को प्रदर्शित करने के लिए शब्दों में निहित ध्वनियों के उच्चारण पर कहीं जोर देकर बोला जाता है, तो कहीं पर हलन्त वर्ण का परसर्ग जोड़कर भावों के अनुकूल शब्दों का अर्थोद्घाटन किया जाता है—

मूल शब्द:—

यां	यांज्,	यहां ही। (निश्चयबोधक)
असो	अस्सोज्	ऐसा ही। ,,
अपणा	अपणाज्	अपना ही (निश्चयात्मक,अपनत्वबोधक)
यूं	यूंज् ,	यों ही (अनिश्चय—सूचक)

हलन्त 'च' और 'ज' आदि को शब्द के अन्त में जोड़कर केवल सीमित शब्दों में भावों को प्रगट करने की दृष्टि से अभिव्यक्ति को स्पष्ट और प्रभावशाली बनाया जाता है। जिन ग्रामीणों के पास शब्द-भण्डार की कमी होती है, उनके लिए भावाभिव्यक्ति का यह माध्यम अधिक महत्वपूर्ण है। कुछ भावों को प्रकट करने वाली निम्न—लिखित ध्वनियां भी उल्लेखनीय हैं।

अरे त्हारी	—	आश्चर्य
अरेत्त्हारी	—	,,
ओऽहो	—	,,

ऐं	आश्चर्य–मिश्रित अज्ञानता
है–है	,, ,, ,,
हौ–ऽ	हां, ठीक
हूं	स्वीकारोक्ति
अस्सोज्	ठीक, ऐसा ही, स्वीकारोक्ति
अह् अह	पीड़ा सूचक
ऊँह् ऊँह्	,, ,,
अहँ् अहँ्	,, ,,
उ–उ–उ	विषम वेदना से चीख उठना
इ–इ–इ	,, ,, ,, ,,
ऊइ	,, ,, ,, ,,
च्–च्–च्	आश्चर्य
सी–सी	दुःख
क्–च्–च्	नकारात्मक उत्तर

संज्ञाः—

मालवी के अधिकांश संज्ञा-पद मूलरूप में संस्कृत के शब्दों पर आधारित हैं। सरलीकरण की प्रवृत्ति के कारण संस्कृत के मूल शब्दों में परिवर्तन होकर तद्भव रूप का विकास हुआ है। मालवी में संज्ञा एवं विशेषण-पद स्वरान्त भी हैं और व्यंजनान्त भी। सामान्यतः मालवी में ओकार बहुल प्रवृत्ति अधिक है। इसके मूल-शब्द ओकारान्त होते हैं और लिंग तथा वचन के अनुसार उनमें परिवर्तन होता रहता है।

ओकारान्तः—

विशेषण—पेलो (प्रथम) दूजो (द्वितीय)
तीजो (तृतीय) चोथो (चतुर्थ) रेलो
ठेलो सपनो (स्वप्न) चीथड़ो

सांदो (सन्धि)	नागो (नग्न)	चूड़ो : चुड़लो
वीरो	गळो	माचो (मंच)
माखो (मक्षिका)	ठिकाणो	मासरो
आसरो (आश्रय)	बापड़ो	शाणो
न्हाणो	थोणो	मड़नो (मास)
कळो (कलह)	मूंडो (मुख)	ठीकरो
छोकरो	बयंरो (स्त्री)	

—उक्त शब्द आकारान्त होने पर बहुवचन एवं गुरुत्व-सूचक होते हैं।

—'इ' अथवा ईकारान्त शब्द स्त्री-लिंग के सूचक हे।

कामणी	लछमी	गादी
यादी (सूचि)	पिंडली	गली
माड़ी	मायड़ी	बेनली
बेनड़ी	बेन्या बई	करनी (कर्म)

कुछ तद्भव शब्दः—

ईर्ष्या > अरखावना, अरखावनी

अर्ध > आदी, आधी, आदो

अद्दी—किरासिन एवं शराब की आधी बोतल के लिये प्रयुक्त (माप-सूचक)

अनुहार	>	उण्यार	कपोत	>	काबर
कुक्षि	>	कूंख, कोंख	अंध	>	आंदो
गुरु	>	गौरजी	तन्तु	>	तुंतड़ा (रेशे)
दिशा	>	दिशावर (विदेश)	बधिर	>	बेरा
द्वार	>	दारी (एक गाली) दरि (सखि)			
प्रहर	>	दुफेरे, दफोर (दोपहर)			
सर्प	>	सांप	बिल्व	>	बीला

मंच > मांच, मांचली मत्कुण > माकण

व्यंजनान्त संज्ञा-शब्दः—

सोय् (सुविधा)	रीस् (क्रोध)	लोग्
कराड़्	हात्	लुवार्
तीस् (प्यास)	भूत्	पलीत्
साक्	मोगन्	लूण्
मिरच्	माल्	नेम (नियम)
थाल्	चाल्	ख्याल्
धार्	बोल्	
ढाल्	गाळ् (गाली)	काम्
धाम्	नाम्	जात्-पांत्
दांत्	गाय्	माय्

[illegible]

बहम	>	बेम्	अफीम	>	आफू
चाह	>	चायना	जमानत	>	जामनी, जामणी
दिल	>	दिलड़ा	टाइम	>	टेम
क्लोज्ड	>	कोज्—यांत्रिक वस्तुओं के बिगड़ने से तात्पर्य			

संस्कृत शब्दों से व्युत्पन्न कुछ संज्ञा-पदः—

मकळाण, मकळांद } < (मकरन्द) तीव्र गन्ध, मछळांद < (म्लेच्छ) दुर्गंध

कुचरांद, कुचरनी } < (कु+चर) छेड़छाड़

धातु क्रियाओं से व्युत्पन्नः—

नृत् > नाच, नाचण, गा > गायन, कृ > करम

दैनिक जीवन से सम्बन्धित एवं सामान्य व्यवहार के लिये प्रयुक्त मालवी के कुछ विशिष्ट शब्द हैं, उनकी सूची दी जा रही है:—

कृषि-कर्म से सम्बन्धितः—

भूमि वर्गः—१. पियत की जमीन—सिंचाई योग्य भूमि।

२. अडान—कूए के पास की भूमि—
गांव से लगी हुई खेती योग्य भूमि।

३. मारेठी या माळेटी —वर्षा के पानी से जिसमें फसल उगाई जाती है।

४. पड़त—जिसमें खेती नहीं होती पर घास आदि पैदा होती है।

५. हँकत—हल चलाकर जिसमें खेती की जाती हो।

६. चरनोई—पशुओं के चरने के लिये रखी गई भूमि

७. बीड़—घास उत्पादन के लिये घेरेदार भूमि।

८. चक—भूमि का वह भाग जहां सिंचाई आदि से योजनाबद्ध खेती की जाती हो।

९. बंजड़—अन-उपजाऊ भूमि।

१०. भुर्मट—भूरी मिट्टी।

कृषि-आयुधः—

हळ, हल, बक्खर

नाँइ—अन्न बोने का, लकड़ी व लोहे का बना, यन्त्र।

असाड़ी नाँइ—एकहरी।

स्याळ नाँइ—दुहरी : जिसमें दो नल हो :

करपा—हल व बक्खर में जोतते समय लगी मिट्टी को साफ करने वाला साधन। दरांती—हंसिया चड़स—मोट।

कृषि-सम्बन्धी अन्य शब्दः—

तोजी—भूमि-शुल्क, भू-आगम खांपा—Stump

दानक्या या दाड़क्या—खेती का काम करने वाले मजदूर।

हळी, हाळी—मासिक वेतन पर खेती का काम करने वाला

धान्य वर्गः—

जुवार के विभिन्न प्रकारः—

१. गांठी : सफेद रङ्ग की जुवार जिसके भुट्टे गठे हुए होते हैं।
२. गूगर गांठी—मटमेले रङ्ग की।
३. अल्यापुरी—मीठी जुवार जिसके दाने खाने योग्य होते हैं।
४. मेवा—मिसरी।
५. चिकनी
६. लाल गांठी।
७. धोरी चचावटी

शाक सब्जीः—

कोला—कद्दू, काशी फल कोथमीर—हरा धनिया

मोगरी—मूले की फली बालोल—सेम

कांदो—प्याज सांटा—गन्ना

खेतों में उगने वाले निरर्थक पौधेः—

ऐड़ा, दरोब (दूर्वा), बोखना, करड़, ससून्दरी, जवासी, गड़ला, दिवान्या, होमा (सर्वा), बोकेना, आँधीझाड़ा (अपामार्ग)।

पशु-पक्षी वर्गः—

न्हार—सिंह
मिनकी—बिल्ली
बळद—बैल
ऊंदरा—चूहा
पाड़ो—भैंसा, पाड़ा
भुण्ना, —ग्राम-शूकर
कूकड़ो—मुर्गा
टेगड़ो, कुतरो—कुत्ता
तालूड़ी—गिलहरी
धोरी, धांड़ली—बैल जोड़ी
गोनो, केड़ल्लो—गाय का बछड़ा
बांदरा—बन्दर
चिड़ी, चिड़कली—चिड़िया

दिशा एवं स्थान-सूचक अव्यय शब्दः—

अठै —इधर
यां —यहां
जां —जहां
हेठ —नीचे
भीतर—अन्दर
बाजू —तरफ
मेरे —निकट
वठै —उधर
वां —वहां
आड़ी—तरफ
बायर—बाहर
मांय —में, अन्दर
तोड़ी—तक
कने —पास
पार —तटवर्ती स्थान का सूचक
आथमणा—जहां सूर्य अस्त होता है। पश्चिम
उगमणा —जिधर सूर्य उदय होता है। पूर्व
धरऊ —जहां ध्रुव तारा होता है। उत्तर
दखणाउ, दक्खन—दक्षिण ।

कालवाचक अव्यय शब्दः—

काल — कल
कद — कब
आज अजू — अभी
जद — जब

अबी — अभी परो — परसूं–परसों

स्वीकारोक्ति एवं निषेधसूचकः—

हुं, हउ — ठीक, अच्छा हां,
नीं — नहीं नइँ मत

प्रत्यय :—

१. अइ—इस प्रत्यय से प्रेरणार्थक क्रिया द्वारा स्त्री–लिंग के संज्ञा शब्दों का निर्माण होता है।

खाना	—	खिलाना	खिलइ
पढ़्	—	पढ़ना	पढ़इ
लड़्	—	लड़ना	लड़इ
चढ़्	—	चढ़ना	चढ़इ
		धोना	धुवइ
चर्	—	चरना	चरइ
		हांकना	हंकइ
		पीना	पिलइ
		जोतना	जुतइ

—कुछ विशेषणात्मक शब्दों से भाव–वाचक संज्ञा के पद बनते हैं:—

सच्चा	सचइ	भला	भलइ
बुरा	बुरइ	मीठा	मिठइ
खट्टा	खटइ		

२. अउ—बिकना बिकउ उड़ाना उड़उ, उड़ौ

३. आर—कर्तृवाचक संज्ञाएं बनती हैं:—

(चर्मकार) चर्म चमार

(स्वर्णकार) स्वर्ण > सुनार

(कुम्भकार) कुम्भ > कुमार

(ग्रामकार) ग्राम > गिंवार

४. आरि—पूजा > पुजारी भिक्षा > भिखारी

५. आरो—अन्ध इंदारो गली > गलियारो

६. अोला—रांड रंडोला खाट > खटोला

७. इया—चांदनी चांदनियां सांवरा > सांवरिया

ब्राह्मण बामनिया वणिक् > बनिया

मालन मालनिया माजन > माजनिया

८. ई— जाल > जाली साथ > साती (साथी)

संग संगी ढोलक > ढोलकी

कटार कटारी

९. खंद—खार > खारखूंदो (ईर्ष्या रखने वाला)

खारखूंदी (स्त्री)

खारखूंदा (बहु वचन)

१० क.—माल > मालक बाल > बालक

ढोल ढोलक

११ चा— रांड, रंडोचा बाई बायचा

१२ ची—(विदेशी प्रत्यय) अफीम अफीमची

अडम अडमची } अवांच्छित अप्रतिष्ठित व्यक्ति

भडम भडमची } हिन्दी, 'ऐरे गेरे नत्थू खेरे'

१३ ट हल्का हल्कट

१४ जादो, जादी (विदेशी प्रत्यय) हराम हरामजादी, हरामजादा

राय रायजादो, रायजादा, रायजादी

१५ जायो, जाया, जायी　　माड़ी　　माड़ी जायो (भाई)
माड़ी जाइ (स्त्री) बहिन
माड़ी जाया (बहु व०)

१६ ड़, ड़ा, ड़ी, ड़ो

गांजा	गंजेड़ी	भांग	भंगेड़ी
वत्स	बछेड़ा	नाव	नावड़ी
छाब	छाबड़ी	गोरी	गोरड़ी
दुख	दुखड़ो	चर्म	चामड़ी, चामड़ो,
जीव	जीवड़ा		चामड़ा

१७ दार, दारी (विदेशी प्रत्यय)　　शर्म　　सरमदार

समझ	समझदार	अक्ल	अकलदार
दुकान	दुकानदार	किराया	किरायेदार

दारी (भाववाचक) दुकानदारी, समझदारी, अकलदारी

१८ न	एवात	एवातन	मालक	मालकन
१९ पो	पूजा	पुजापो	बूढ़ा	बुढ़ापो
	कुड़ना	कुड़ापो	रांड	रंडापो

२० ला, ली, लो

एक	एकलो, ऐकली, एकला
दो	दोकला, दोकली
आगे	आगलो, आगली
पीछे	पाछला, पाछली, पाछलो
बीच	बिचलो, बिचली, बिचला
छाया	छांयलो

२१ वाला, वाली, वालो (क्रिया-सूचक)

खाना	खाने वाला, खाने वाली, खाने वालो
बेचना	बेचने वाली, बेचने वालो

वस्तु-व्यापार-सूचक:—

फूल	फूल वाली	दूध	दूध वाली
गाड़ी	गाड़ी वाला आदि		

स्थान-सूचक:—

रतलामवाला, इन्दौरवाला आदि ।

२२ दान, दानी (विदेशी प्रत्यय)		धूप	धूपदानी, धूपदान
पीक	पीकदानी पीकदान	चूना	चूनादानी

उपसर्ग:

१—अन	गिनना	अनगिनती (असंख्य, बहुत)
	सुनना	अनसुन्यो, अनसुण्यो
	देखना	अनदेख्यो, अनदेखे
	जानना	अनजान, अनजाने
	पीयर	अनपीयरनी (जिसके मायका नहीं हो)

—प्रथम शब्द को छोड़कर अन्य पदों में 'अन' अभावात्मक अर्थ का सूचक है ।

२—अप	जस	अपजस (अपयश)
३—अव-ओ	गुण	ओगणो
४—कु	कर्म	कुकरम
	चलन	कुचलन, कुचाल, कुचरणी (छेड़खानी)
		कुचरांदी (व्यर्थ का झगड़ा करने वाली)
		कुचरांदो (पुल्लिंग)

५—कम (विदेशीउपसर्ग)		जोर	कमजोर
अक्ल	कम अक्ल	असल	कमसल

६–निर, नि
धन निर्धन्यो
रोग निरोगियो (स्वस्थ्य)

कारक:—

मालवी में संस्कृत-प्राकृत के विभक्ति-रूपों के कुछ ही रूप मिल पाते है। अपभ्रंशकाल से विभक्ति रूपों को सहायक-शब्दों द्वारा प्रकट करने की जो परम्परा चल पड़ी है, बाद में कारक-ज्ञापन करनें वाले परसर्ग में बदल गई।

कर्मणि और भावे प्रयोग में 'ने' परसर्ग का प्रयोग होता है। कर्तरि प्रयोग परसर्ग से प्रायः शून्य होता है:—

बाजी बोल्या
उ निपटी ग्यो
वी आगाज् गया
रामाजी रिसैग्या
म्हने कइं कर्या
तने कइं बी काम नी कर्‍यो
ऊने कर्‍या कराया काम पे पाणी फेर दियो

कर्म—के, रे, खे
ऊके ताव घणो आयो
तमारे कइं करणो
कीके कइं पड़ी हे
आखेज यो काम करनो पड्यो
कम्बल खे लत्ता से जोड़्यो थो

—'ने' परसर्ग का कर्म-कारक में भी प्रयोग मिलता है:—

थांका बोया घणा नीपजे लालू ने परणावोरे।
कस्ट्या ने घड़ी भारी

सम्प्रदान:—रे, के
दायजी ने म्हारे पैसा दिया।
तमके ऊने फूटी कोड़ी बी नी दी

सारू (लिये)

—राखी की रीत सारू पीयर को मूंडो धोइ री थी।

—सगळा सारू चूनड़ लावजे।

—पेट सारू म्हके भटका खाना पड्या।

—घरे घर रोटी सारू भटकतो फिरूं।

—लछमी थारा सारू म्हारी जिन्दगी लुटी गी

कारणे (लिये)— हार के कारणे सायब लड़त हे।

एक बालूड़ा के कारणे सायब लावे लोड़ी सौक।

—'वास्ते', खातर आदि विदेशी परसर्ग भी प्रचलित हैं।

करण और अपादानः— से, तीं

परसर्ग से तीं : केवल अश्लील शब्दों के साथ प्रयुक्त होता हैं :

'तीं' का प्रयोग करण और अपादान दोनों में होता हैः—

—यो काम म्हारे तीं नी होवे। —कांती आया ?

मारे (के कारण)—छोरा छोरी होण का मारे तो फुरसत नी मिले।

सम्बन्धः— { का, की, को / रा, री रो } म्हाका, म्हाकी, म्हाको

थांका, थांकी, थांको म्हारा, म्हारी, म्हारो

अधिकरणः—

अधिकरण का प्रत्यय चिन्ह 'ए' है जो परसर्ग की तरह संज्ञा है, अलग नहीं होताः—

माथे—मस्तक पर। घरे— घर में

सांते—साथ में। आदी राते–अर्धरात्रि में।

'में' और 'पे' परसर्ग— गेल्या गांव मेंज् मत पड्यो रीजे।

—मसकरा मूंडापेज् भाड़ता। —वां घोड़ा पे बठो थो।

अधिकरण सूचन के और परसर्गः—

हेठ : नीचे मांय : में, अन्दर उप्पर : पर

कने : पास।

समासः—

सामासिक शब्दों की दृष्टि से मालवी के कुछ शब्दों पर विचार किया जा सकता है। द्वन्द्व समास के शब्दों का इस भाषा में बाहुल्य है।

द्वन्द्व समास:—

सम्बन्ध-सूचक:–	भई-बेन	मां–बाप	काका-काकी
	भई-भतीजा	भई-भोजई	बेन-बेटी
	बेन-भानेज	बाप-बेटा	
अङ्ग परक—	हाथ-पांव	नाक-कान	
जाति परक:-	बाण्या-बामण	नाइ-धोबी	भंगी-चमार
क्रियामलक:-	खानो-पीनो	उठनो-बेठनो	रोणो-धोणो
	आणो-जाणो		
वस्तु परक:—	पान-पतासा	पान-फूल	गोदड़ा-गाबा

—एक ही अर्थ के दो शब्दों से बने द्वन्द्व-समास के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं:—

ठोर-ठिकाणो	पतो-ठिकाणो	काम-काज
भूल-चूक	ठामड़ा-टीकरा	कपड़ा-लत्ता
लुच्ची-लफंगी	नोकर-चाकर	जाण-पेचान
कदी-कदाक	सगा-सोइ	

अनुचर शब्दों से युक्त समास:—

दवइ-दारू	कमीण-कारू	गोल-मटोल
नेम-धरम	पाड़-पडोस	आस-पास
हांडा-कूंडा	धरम-पुन	चोरी-चकारी
धूलो-धमासो		

प्रतिचर शब्दों का समास:-

छोटी-मोटी	पाप-पुन	राजा-परजा
अग्गम-पच्छम	धूप-छांय	रात-दन
सोरो-दोरो (सरल-कठिन)		अगाड़ी-पिछाड़ी

विकार शब्द सहित— ठीक-ठाक

अनुकार या ध्वन्यात्मकः—

गांवड़ा-गोठड़ा	ठीया-पाया	भोजन-वोजन	तेल-वेल
होना-वोना	जाना-वाना	बेसन-वेसन	बातां-चीतां
गाड़ा-गाडूलिया	झाड़-झाडूलिया ।		

तत्पुरुष

तत्पुरुष के प्रचलित सभी भेदों के साथ नञ् तत्पुरुष के कुछ उदाहरण उल्लेखनीय हैं:— अनपीयरनी, अनजान

द्विगु:—पचरंगी, पचरंग्यो, सतरंगी

कर्मधारय—कळमुइ, काळजीबी, हाँपखादो (सर्प काटा—एक गाली)

बहुव्रीहि—दो जीवां (गर्भवती महिला से तात्पर्य है ।

विशेषण

—हिन्दी के सामान्य आकारान्त विशेषण-शब्द मालवी में 'ओकारान्त' हो जाते हैं ।

गुण-सूचक

खारो	मीठो	मोळो (फीका)	कड़वो
टंडो	ऊनो (गरम)	नानो	छोटो
मोटो	खोटो	अच्छो	बुरो

वर्ण-सूचक

कालो	पीलो	धोलो	रातो (लाल)	भूर्यो
भूरो	उजलो	हरियो, हर्यो		लीलो

—**इकारान्त** होने पर **स्त्री-लिंग-सूचक** विशेषण बनते हैं:—

खारी	मीठी	भोळी	कड़वी	ऊनी	ठंडी
नानी	छोटी	मोटी	खोटी	अच्छी	बुरी
काली	पीली	धोली	राती	भूरी	उजळी

—कुछ शब्दों में **लिंग-वचन** के कारण विकार नहीं होता:—

कसूमल-पाग, कसूमल-पागड़ी कसूमल-घाट (विशेष प्रकार की ओढ़नी)

—आकारान्त विशेषण-पद के पदान्त **'आ'** का लोप कर छोटे-बड़े अथवा लघु-गुरु का भाव व्यंजित करने के लिए **'को' 'लो'** आदि **परसर्ग** जोड़ दिये जाते हैं:—

नानको	मोटको	छोटको
आगलो	पाछलो	बिचलो

—**'की'** और **'ली'** जोड़ने पर स्त्री-लिंग का सूचक:—

नानकी	मोटकी	छोटकी
आगली	पाछली	बिचली

—तुलनात्मक भाव व्यंजित करने के लिए **'सा' 'सी' 'सो' सरखा, सरखी** आदि **परसर्ग** लगते हैं:—

अच्छीसी	अच्छासा	छोटीसी	छोटासा
नानोसो	नानीसी	म्हारा सरखी	तमारा सरखी

—**अतिशयता या आधिक्य का भाव प्रकट करने के लिये:—**

जादा (ज्यादा) जाफा जास्ती (स्त्री-लिंग के लिये)

भोत (बहुत) भोत सारो (बहुत अधिक)

—**संख्या-सूचक** शब्दों के द्विगु समास जैसे कुछ **विशेषण-पद** भी उल्लेखनीय हैं:—

कालो घोड़ो सतरंगी लगाम। बीराजी की पचरंग पाग।

सातमासी छोरी हुई।

संख्या-सूचक विशेषण:—

मालवी में एक से लेकर दस तक के गणनात्मक संख्यावाचक विशेषणों का उच्चारण हिन्दी में प्रचलित रूपों के समान ही होता है। ग्यारह से अठारह तक की संख्या का उच्चारण कुछ भिन्न है। शब्दान्त 'ह' का उच्चारण मालवी में नहीं होता। 'ह' ध्वनि का स्थान 'आ' ले लेता है।

११ (ग्यारह) ग्यारा	१२ (बारह) बारा
१३ (तेरह) तेरा	१४ (चौदह) चवदा
१५ (पन्द्रह) पंदरा, पंद्रा	१६ (सौलह) सोला
१७ (सत्रह) सतरा	१८ (अठारह) अठारा, अट्ठारा

—हिन्दी की सौ तक की संख्याओं में से जिनका भिन्न-रूप में उच्चारण होता है:—

१९ (उन्नीस) गुन्नीस	२१ (इक्कीस) इक्वीस
२२ (बाइस) बावीस	२३ (तेइस) तेवीस
२४ (चौबीस) चोवीस	३९ (उन्तालीस) गुनचालीस
४३ (तितालीस) तिरयालीस	४४ (चवालीस) चुम्मालिस
४९ (उन्चास) गुनपचास	५१ (इक्यावन) इक्कावन
५४ (चौवन) चोपन	५९ (उनसठ) गुनसाठ
६३ (त्रयसठ) तिरसठ	६६ (छियाछठ) छांछठ
७१ (इकहत्तर) इक्कोतर	७२ (बहत्तर) बहोत्तर
७३ (तिहत्तर) तियोत्तर	७४ (चवहत्तर) चुम्मोतर
७७ (सतत्तर) सित्योतर	७८ (अठहत्तर) इट्ठयोत्तर
७९ (उन्यासी) गुन्यासी	८३ (तिरासी) तिरयासी
८५ (पचासी) पिच्यासी	८७ (सतासी) सित्यासी
८८ (अठासी) इट्ठासी	८९ (नवासी) निव्यासी
९० (नब्बे) नेऊ	९१ (इक्यानवे) इक्कानू (णु)

९२ (बान्वे) बाणू	९३ (तिरानवे) तिरयाणू
९४ (चौरानवे) चोराणू	९५ (पचानवे) पिच्चाणू
९६ (छियानवे) छन्नू (णू)	९७ (सत्तानवे) सित्यानू (णू)
९८ (अठानवे) इट्ठ्यानू	९९ (निन्यानवे) निन्याणू
१०० (सौ) सो, सऊ	

—क्रमसूचक (संख्यावाचक विशेषण)
पेलो, दूजो, तीजो, चोथो, पांचमो, छट्ठो, सातमो, आठमो आदि ।

—स्त्री लिंग के लिए "ई" परसर्ग :—
पेली, दूजी, तीजी, चोथी आदि ।

—तिथिक्रम निम्नलिखित है :—

पड़वा प्रतिपदा	दूज	तीज	चौथ
पंचमी व पांचम	छट	सतमी, सातम	अठमी, आठम
नोमी	दसमी	ग्यारस	बारस
तेरस चौदस	पूनम	(पूर्णिमा)	अमावस ।

—समानुपाती संख्या सूचक विशेषण :—
एकला, दोकला, दोवड़ (दुहरी)

—समूह वाचक संख्या :—

सामान्य व्यवहार के वस्तु-क्रय-विक्रय में जहाँ वस्तु—विशेष गिनकर बेची या खरीदी जाती है, मालवी में कुछ विशेष समूहवाचक शब्द प्रचलित हैं :—

१. जोड़, जोड़ा, जोड़ी—
दो की संख्या का सूचक शब्द—धोती जोड़ा बेल जोड़ी, वैसे

'जोड़ा' अथवा 'जोड़ी' शब्द स्त्री पुरुष के युग्म के लिए भी प्रयुक्त होता है ।

जोटा :—यज्ञोपवीत (जनोई) भी जोड़ से धारण की जाती है अतः उस जोड़ा को जनोई का 'जोटा' कहते हैं ।

२. गंडा :–चार का समूह।

कौड़ियां प्रायः गंडे के रूप में ही गिनी जाती थीं। ग्रामीण क्षेत्र के अनपढ़ लोग आज भी खुले पैसों की गणना प्रायः गंडे से ही करते हैं।

३. पचौल :–पांच का समूह।

पक्के आम, ऊपले (कंडे) आदि पचौल से ही बेचे जाते हैं।

४. छकड़ा :—छः का समूह।

पके आम, (केरी) गिनने के लिये।

५, कोड़ी :–बीस का समूह।

बांस, बल्लियां बकरियां आदि गिनाने के लिये।

—भिन्नत्व–सूचक संख्याएँ :–

पाव $\frac{1}{4}$ एक चौथाई, आदो, आधो, आदीआधी—$\frac{1}{2}$ अर्ध,

पोन या पोणो $\frac{3}{4}$ (तीन चौथाई) आखो या पूरो (अक्षत या पूर्ण)

सवा $1\frac{1}{4}$ डेड़ $1\frac{1}{2}$, अड़ई, ड़ई, ढई $2\frac{1}{2}$,

—संख्या की अनिश्चित स्थिति को प्रकट करने के लिये प्रायः दो संख्या को मिलाकर बोला जाता है। वहाँ संख्या के अर्थ का वास्तविक सूचन नहीं होता :–

दो–चार, पांच–पच्चीस, सो–दो सो, पान्दस (पाँच–दस)

पान्सात (पाँच–सात) हजार–बारा से (हजार–बारह सौ)

परिमाण वाचक :—

तौल की वस्तुओं के लिये 'सेर' 'छटांक' 'मन' आदि हिन्दी में प्रचलित शब्दों के अतिरिक्त मालवी के कुछ शब्द उल्लेखनीय हैं।

धड़ी–५ सेर, मन, मण–८ धड़ी, माणी–६ मन, मण

मणासा–१०० माणी कणासा–१०० मणासा

—प्रकार–वाचक विशेषण :– ऐसा

	पु०	स्त्री०
रांगड़ी	असा, असो	असी
मालवी	एसो,	एसी,

रांगड़ी	पु०	स्त्री०
वैसा	वसो, वेसो	वसी
जैसा	जेसो, जसो, जसा	जेसी, जसी
कैसा	केसो, कसो	कसी

—परिणाम–वाचक विशेषण :—

	पु०	स्त्री०
इतना	इतरा, इत्ता, अतरा (रांगड़ी)	इतरी, इत्ती, अतरी
उतना	उतरा, उत्ता	उतरी, उत्ती
जितना	जित्ता, जित्तो, जितरा	जित्ती, जितरी
कितना	कित्तो, कित्ता	कितरी, कित्ती, कितरी

—सर्वनाम की तरह भी इन विशेषणों का प्रयोग होता है।

—प्रश्नवाचक सर्वनाम के लिए प्रयोग करने समय 'क' जोड़ दिया जाता है।

—कितरोक How much ? —कितराक How many ?

आचरण एवं प्रवृत्ति सूचक विशेषण :–

मालवी में व्यक्ति के स्वभाव, आचरण आदि से सम्बन्धित गुणावगुण-सूचक कुछ शब्द-विशेष उल्लेखनीय हैं :–

डबा :–सामान्य अर्थ बैल होता है। मूर्खतापूर्ण आचरण करने वाले व्यक्ति का सूचक।

गदड़ाः—धूल घूसरित बालक के लिए प्रयुक्त ।

घामड़ः—स्वच्छता की ओर ध्यान नहीं देने वाला ।

मलीछः—गन्दे वस्त्र पहिनने वाला ।

घमो—घामड़ः—मलिन बुद्धि का ।

दुच्चाः—संकीर्ण, गाम्भीर्य का अभाव ।

ओछाः—संकीर्ण मनोवृत्ति का ।

चंटः—चालाक ।

छाकटाः—धूर्त, बदमाश ।

मछळांदा—घृणित, बहुत गन्दा रहने वाला (म्लेच्छ शब्द से व्युत्पत्ति)

सूगळाः—गन्दा ।

तूंतड़्याः—तू तड़ाक से बोलने वाला, ओछा ।

गेल्याः—अनसमझ ।

गांग्याः— गूंगा शब्द से व्युत्पत्ति । यथा—अवसर पर उचित उत्तर देने की जिसमें क्षमता न हो ।

बांगा, बायचा, बांगलाः—सामान्य एवं शिष्ट आचरण करने में असमर्थ ।

बण्डः—अधिक ऊधम करने वाला । (बालकों के लिए प्रयुक्त)

रळ्याः—बुद्धू ।

बगंडः—हृष्ट—पुष्ट एवं धृष्ट प्रवृत्ति की औरत ।

जेलूः—ईर्ष्यालु स्त्री ।

कुचरादोः—छेड़छाड़ करने वाला ।

भोंगलाः—भोंदू ।

डांकीः—अधिक खाने वाला ।

हड़म्बाः—हिडिम्बा स्त्री के लिए गाली—राक्षसी आचरण व व्यवहार वाली ।

सर्वनाम :–

पुरुषवाचक सर्वनाम :–उत्तम पुरुष–'मैं'

	रांगड़ी		मालवी	
	एक वचन	बहुवचन	एक वचन	बहु वचन
कर्ता	हूं, म्हें, में	म्हा	में, हू, मु, म्ह	हम
कर्म	मके, म्हके	म्हाके	'म्हारे' म्हके	हमके
करण	म्हारेती	म्हाकाती	म्हार से	हमारा से
संबंध	म्हारो म्हाणो	म्हाको, हमाणो	म्हारो	हमारो
अधिकरण			म्हारे पे	हमारा पे
			म्हारे मे	हमार मे

मध्यम पुरुष 'तू'

कर्ता	थूं	त्हां, थें	तम	तम
कर्म	त्हके	त्हाके, थांके	त्हके, तमके, थारे	तमारे
करण–अपादान		त्हां तीं	तम से	तमारा से
संबंध	त्हांको	त्हांका	थारा, थारो	तमारो, तमारा
अधिकरण	त्हां पे	त्हाका पे	थारा पे, तम पे	तमारा पे

अन्य पुरुष–'वह'

कर्ता	वो, ऊ, उणा	वी, वणा	ऊ, ओ, उना	वी, उन
कर्म	वोके, वीके, ऊके	वणा के	ऊके, ओके, ओखे	वीनके, उनके
अपादान	वणातीं	वणातीं	ऊकासे, ऊकासे	उनके
सम्बन्ध	वोका, ऊक	वणा का	ऊको, ओको ओखो वीका	उनका
अधिकरण	ऊपे	वणा में	ऊमे, ऊपे	वीमे

—कर्म और सम्प्रदान के कारक चिन्ह एक से हैं–'के' । इसी तरह करण और अपादान के 'तीँ' और 'से' में भी समानता है।

—स्त्री–लिंग के सूचन के लिये सर्वनाम के अन्त में प्रायः "इ" जोड़ देते हैं:–

वणी, वणी के, वणी को, वणी की, ऊको, म्हारी, तमारी आदि !

—उत्तम पुरुष एवं मध्यम पुरुष के सम्बन्ध–सूचन में भी "इ" जोड़ कर शब्द बनते हैं:–

म्हारी, म्हांकी, थारी, तमारी आदि ।

—"वो", सर्वनाम का प्रयोग पुंलिग और नपुंसकलिंग दोनों के लिये होता है ।

वा—स्त्री लिंग का सूचक ऊ—का प्रयोग तीनों के लिये ।

—मालवी में कर्म कारक के चिन्ह 'के' के स्थान पर 'खे' का प्रयोग भी उल्लेखनीय है:—

उखे, उनखे, म्हखे, ओखे, तमखे आदि ।

इसी तरह निमाड़ी में भी 'मख' 'ओख' तख आदि प्रयोग मिलते हैं। यह बुन्देली का प्रभाव कहा जा सकती है ।

उल्लेख सूचक सर्वनाम

निकटता–सूचक–'यह'

रांगड़ी		मालवी	
पुंल्लिग	स्त्री लिंग	पुंल्लिग	स्त्री लिंग
यो	या	यो	या
अण	अणी	इना	इनी
इणा	इणी	अना	
इ		इस	

'इ'–स्त्री लिंग और पुलिंग

कर्ता	कर्म	करण	सम्बन्ध	अधिकरण
इने	इके	इसे	इनी इकी	इपे इमें

—रांगड़ी में **अनुस्वार** का प्रयोग करने से **बहुवचन** का रूप बन जाता है :–**अणाँ, इणाँ आदि** ।

—मालवी और रांगड़ी में उक्त **सर्वनाम** के **बहुवचन** का व्यवस्थित रूप "ये" और "इन" है ।

—"इ" और "इन" आदर-सूचक के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं । दूरी-सूचक सर्वनाम 'वह' के लिये अन्य पुरुष के रूप 'ऊ' 'वा' वी आदि का प्रयोग किया जाता है ।

सम्बन्धवाचक सर्वनाम—'जो'

रांगड़ी		मालवी	
एक वचन	**बहुवचन**	**एक वचन**	**बहुवचन**
जो, जणी	जो, जणा	जो	जिन

—**विभक्ति चिन्ह** अथवा **पर-सर्ग** लगाकर विभिन्न कारक-रूप भी अन्य सर्वनामों की तरह व्यवस्थित हैं:—

जणांने, जणीने, जिनने, जणांका, जणांकी, जणांतीँ, जणा से आदि

प्रश्नवाचक सर्वनाम—कौन, किस

रांगड़ी

कर्ता	कुण, कणी (ने परसर्ग का प्रयोग भी किया जाता है)
कर्म	कुण के, कणी के
करण-अपादान	कणातीँ

सम्बन्ध	कुण का, कणा का, कणा की (स्त्री)
अधिकरण	कणी पे, कणा पे

मालवी

कर्ता	कणी ने, कीने, कोना, कीनी
कर्म	कि के, किन के
करण-अपादान	किन से
सम्बन्ध	की की, की के
अधिकरण	की पे, की में

—**अनिश्चयवाचक सर्वनाम** के लिए '**कोइ** '**कणी**' आदि शब्दों का प्रयोग होता है ।

—**क्या** के लिए '**कइँ**', '**कें**', '**कांई**' प्रचलित हैं ।

आत्म-वाचक सर्वनाम

	रांगड़ी	मालवी
कर्ता	अपण आपाँने	अपन, अपन ने
कर्म	अपणा के, आपां के	अपन के, अपना के
करण-अपादान	आपां तोँ, अपणां तीँ	अपन से, अपना से
सम्बन्ध	आपां का, अपणां का, अपणां की	अपना का, अपना की
अधिकरण	अपणा में, अपणा में	अपना में, अपना में

—**आदरसूचक** भाव प्रकट करने के लिये प्रायः सभी **सर्वनामों** के **बहुवचन** का प्रयोग किया जाता है ।

—'**सा**' और '**जी**' **परसर्ग** लगाकर भी आदर-सूचक शब्द बना लिये जाते हैं:—

'**सा**'—भाभासा, (पिता), मामासा (मामाजी), मामीसा (मामीजी) आदि प्रयोग रांगड़ी या रजवाड़ी में ही अधिक मिलता है ।

'सा'—साहब शब्द का संक्षिप्त रूप है।

'जी'—का प्रयोग मालवी, रांगड़ी आदि सभी उपभेदों में प्रचलित है।

साकल्यवाचक

—समूहगत सर्वनाम के लिये मालवी में सब, सगला, सबी आदि शब्दों का प्रयोग होता है।

—सगला शब्द पुल्लिंग है और सगली स्त्री-लिंग।

क्रियापद:—

मालवी में संस्कृत की सिद्ध-धातु (मूल) एवं साधित धातु के विविध प्रकार बनते हैं, जो प्राकृत एवं अपभ्रंश से आये हैं और इन धातुओं में ध्वनि-परिवर्तन बहुत कुछ हो चुका है :—

१. संस्कृत	मालवी मूल	विकरण रूप
कृ	कर्	करणो (नो)
कृत्	काट्	कटानो—काटनो
कम्प्	कँप्	कांपनो
कूर्द	कुद्	कूदनो
कथय्	कह	केनो, केणो
खाद्	खाना	खाणो
गण्	गिन्	गिननो
गर्ज्	गाज्, गरज्	गाजणो, गरजणो
चर्	चर्	चरनो
चल्	चल्	चलनो
चुम्ब्	चूम्	चूमनो
छिद्	छेद	छेदनो
ज्ञा	जान्	जाननो
जागृ	जग्	जगनो

संस्कृत	मालवी रूप	विकरण रूप
जागृ	जाग्	जागनो
पा	पी	पीनो
बुध्	बूझ्	बूझनो
भृ	भर्	भरनो
रुद्	रोव्	रोवणो, रोनो
श्रु	सुन्	सुननो
तिष्ठ्	ठेर	ठेरनो

२.

प्राकृत	मालवी मूल	विकरण रूप
कड्ढ	काढ्	काड़णो
कुट्ट	कूट्	कूटनो
बुड्ड	डूब	डूबनो
चुक्कइ	चूक्	चूकनो
चड़	चड़्	चड़नो
बोल्लइ	बोल्	बोलनो
भुल्लइ	भूल्	भूलनो
बेच्चइ	बेच्	बेचणो

३. उपसर्ग संयुक्त :—

आ+वृत्	ओट	ओटानो
अव+तृ	उतर्	उतरनो
निर+इक्ष्	निरख्	निरखनो
नि+मंत्र्	नोत्	नोतनो
निर्+वह	निभ्	निभनो
प्र+क्षाल्	पखाल्	पखालनो

४. साधित धातुएं :—

मालवी की साधित धातुओं में अधिकांश रूप प्रेरणार्थक हैं जो क्रियापदों में 'आव' एवं 'आड़' जोड़ने से बनते हैं :—

बैठ्, बठ्	बैठाव, बठाव	बेठाड़ो, बठाड़ो
ठेर्	ठेराव	——
गाव्	गवाव	गवाड़ों
जीम्	जिमाव	जिमाड़ो
कह	केवाव	केवाड़ों
देख्	देखाव	देखाड़ो
देना	——	देवाड़ो
खाना	——	खवाड़ो
ओढ़ना	ओढ़ाव	——
समझनो	समझाव	समझाड़ो
बाँध्	बंदाव	——
काटनो	कटाव	कटाड़ो
लादनो	लदाव	लदाड़ो

५. नाम-धातु:—

संज्ञा अथवा क्रियामूलक विशेषण को जब धातु रूप में प्रयुक्त किया जाता है तब उन्हें नाम धातु कहते हैं। मालवी में संस्कृत एवं विदेशी संज्ञा शब्दों से नाम-धातु बनते हैं:—

संस्कृत संज्ञा से:— लज्जा लजाना

हरित —बागां की दूब हरियाई हो
पाश —फंसनो
पश्चाताप—पछतानो
भाषण —बखाणनो
शुष्क —सूखनो
मूल्य —मोलानो

विदेशी संज्ञा-शब्दों से:—

शर्म —सरमानो	अकड़—अकड़नो
गर्म —गरमानो	नरम —नरमानो

—इस तरह की अधिकांश धातुएं 'आ' प्रत्यय लगने से बनती हैं।

—कुछ नामधातुएं—करना, होना, फेरना, खाना आदि क्रियाओं के संयोग से बनती हैं।

साठ —सठिया जाना	गर्म —गरम होनो
शुष्क —सूख जानो	गाळ—गाली देनो, गाली खानो
छेवड़ो (छेड़ो)—छेड़ो काड़नो	आड़ —आड़े फिरनो (मार्ग रोकना)
माटी—माटी करनो (पति करना)	आड़े आनो (सहायता देना)

संयुक्त क्रिया-पद:—

विभिन्न क्रियापदों के साथ संज्ञा, कृदन्त आदि के प्रयोग से किसी भी भाषा में विशेष अर्थ का द्योतन होता है। दो संयुक्त-पदों में क्रिया-पद सहायक रूप में ही प्रस्तुत होता है:—

१. संयुक्त क्रियापद-संज्ञा के साथ:—

राड़ मांडी—लड़ाई शुरू की, मांडना मांड्या—भूमि-चित्र बनाये

२. संयुक्त क्रियापद सहायक-क्रिया के साथ:—

भरवा लाग्यो —भरने लगा	खावा लाग्यो —खाने लगा
रेवा लाग्यो —रहने लगा	करवा लाग्यो —करने लगा
केवा लाग्यो —कहने लगा	मनावा लाग्यो—मनाने लगा
रोइँ रया हे —रो रहे हैं	जइँ रिया हे —जा रहे हैं।
अइँ रिया है —आ रहे हैं।	

भूतकाल (नरन्तरता-सूचक):—

धोइँ री थी —धो रही थी	खइँ री थी —खा रही थी
जइँ रियो थो—जा रहा था	बजइँ रया था—बजा रहे थे।

पुनर्घटित-भूतकालः—

अइँगी —आ गई अइँग्या—आ गये अइँग्यो—आ गया
कइँग्या —कह गये खइँग्या—खा गये ।

घटमान भूतकाल (सहायक क्रिया के साथ):—

		एक वचन	बहुवचन
रहना	>	रेतो थो	रेता था
आना	>	आयो थो	आया था
जाना	>	गयो थो	गया था
बैठना	>	बठो थो	बठा था ।

—स्त्री-लिंगः—बठी थी, अइँथी, रेती थी आदि ।

रांगड़ी रूप

एक वचन	बहुवचन	एक वचन	बहुवचन
गयो थको	गया थका	आयो थको	आया थका

पूर्व-कालिक क्रिया:—

अइँने—आकर जइँने—जाकर भरीने—भरकर बठीने—बैठकर
—'ने' परसर्ग से मालवी में **पूर्व-कालिक** क्रिया के रूप बनते हैं ।

वर्तमान काल–निरन्तरता सूचक

गीत गइँ री हे—गीत गा रही है, पाणी पी री हे—पानी पी रही है,
पाणी पै री हे —पानी पिला रही है ।

घटमान वर्तमान, सहावक क्रिया के साथः—

चर् —चरऊं हूं—मैं चराता हूं । चल् —चलूं हूं—मैं चलता हूं
आना–अऊं हू —मैं आता हूं । रहना–रूं हूं —मैं रहता हूं ।

कृदन्तीय रूप के साथः—

भरी हे —भरी हुई है धरी हे—रखी हुई
फिरणो पड़े हे—फिरना पड़ता है ।

वर्तमानकालिक कृदन्तीय रूपः—

समझावतां–समझाते हुए। जिमावतां–जिमाते हुए। निपावतां–निपाते हुए
अव्यवस्थित—बिछातां—बिछाते हुए   दिन छतां—दिन रहते हुए

सामान्य वर्तमान (भरना)	एक वचन	बहु वचन	सामान्य भविष्यत् एक वचन	बहु वचन
उत्तम पुरुष	भरूं	भरां	भरूंगा	भरांगा
मध्यम पुरुष	भरे	भरो	भरेगा	भरोगा
अन्य पुरुष	भरे	भरें	भरेगा	भरेंगा

प्रेरणार्थक रूपः—

उत्तम पुरुष	भरवाऊंगा	भरवावांगा
मध्यम पुरुष	भरवावेगो	भरवावेगा
अन्य पुरुष	,,	,,

सामान्य भविष्यत् के कुछ रूप—सहक्रिया के साथः—

रइ जावगा —रह जाओगे   अइ जावगा —आ जाओगे
वी केताज् रेगा-वे कहते ही रहेंगे   मंगाइ लांगा–मंगवा लेंगे।

संभाव्य आज्ञार्थकः—

ऊके साथ रीजे–उसके साथ रहना। याद मत देवाड़ जे–याद मत दिलाना
झाड़ पे मत चड्यो रीजे—झाड़ पर मत चढ़े रहना।

आज्ञार्थक सह-क्रिया के साथः—

कइ दे —कह दे   कइ दो —कहदो (आदर सहित)
मोलइ दे—खरीद दे   मोलइ दो—खरीद दीजिये (आदर सहित)
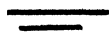
संदर्भसूची

(अ)

हिन्दी

१. ढोला मारू रा दूहा—नरोत्तम स्वामी द्वारा सम्पादित ।

२. निमाड़ी लोक-गीत—रामनारायण उपाध्याय ।

३. पालि साहित्य का इतिहास—भरतसिंह उपाध्याय ।

४. भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी—डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ।

५. भाषा-विज्ञान—डॉ० श्यामसुन्दरदास ।

६. भोजपुरी भाषा और साहित्य—डॉ० उदयनारायण तिवारी ।

७. मालवी लोक-गीत—श्याम परमार ।

८. मालवी और उसका साहित्य—श्याम परमार ।

९, मालवी कविताएं—मालव लोक साहित्य परिषद् का प्रकाशन ।

१०. राजस्थान के लोक-गीत—सूर्यकरण पारीक एवं नरोत्तम स्वामी ।

११. राजस्थानी भाषा और साहित्य—मोतीलाल मेनारिया ।

१२. राजस्थानी भाषा—डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ।

१३. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास—डॉ० उदयनारायण तिवारी ।

१४. हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास
—शमशेरसिंह नरूला

१५. हिन्दी साहित्य में अपभ्रंश का योग—नामवरसिंह ।

(आ)

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश

१. काव्य मीमांसा--राजशेखर ।
२. कुवलयमाला कहा—उद्योतन सूरि (गा० ओ० सी० संख्या ३७)
३. कुमारपाल प्रतिबोध—सोमप्रभ सूरि ।
४. नाट्य-शास्त्र—भरत (निर्णय सागर प्रेस, १६४३ ई०)
५. पातंजल महाभाष्य—(किलहार्न संस्करण)
६. पाहुड़ दोहा—रामसिंह ।
७. प्राकृत सर्वस्व—मार्कण्डेय (विजगापट्टम आवृत्ति)
८. प्रबन्ध चिन्तामणि—मेरुतुङ्ग ।
९. प्राकृत व्याकरण—हेमचन्द्र ।
१०. देशी नाममाला—हेमचन्द्र ।
११. बाल रामायण—राजशेखर ।
१२. महापुराण—पुष्पदन्त ।
१३. सरस्वती कण्ठाभरण—भोज (निर्णय सागर आवृत्ति)
१४. रामायण—स्वयंभू
१५. धम्म दोहा—देवसेन ।
१६. सन्देश-रासक—अब्दुर्रहमान ।

(इ)

गुजराती

१. चूंदड़ी भाग १ व २—झवेरचन्द मेघाणी ।
२. रढियाली रात, भाग १, २, ३ और ४—मेघाणी
३. सौराष्ट्र नी रसधार भाग १ व ४—मेघाणी

(ई)

हस्तलिखित (अप्रकाशित)

१. मालवी दोहे—चिन्तामणि उपाध्याय

२. मालवी लोक-गीत, १, २ व ३

(उ)

पत्र-पत्रिकाएं

१. वीणा (मासिक) इन्दौर, हिन्दी

२. बुद्धिप्रकाश (त्रैमासिक) गुजराती

३. हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, हिन्दी

(ऊ)

अंग्रेजी

१. अशोक—आर० के० मुकर्जी (राजकमल प्रकाशन)

२. बुद्धिस्टिक स्टडीज़—डॉ० लाहा

३. सेन्सस आफ सेन्ट्रल इण्डिया भाग, १६, सन् १६३१.

४. सी० आय० आय० भाग ३, फ्लीट

५. बुद्धिस्ट इण्डिया—प्रो० रायस डैविड्स (सुशील गुप्त प्रकाशन)

६. इण्डेक्स आफ लैंग्वेज नेम्स—जार्ज ग्रियर्सन

७. इण्डियन लिटरेचर—विण्टर निरट्स

८. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया ग्रन्थ ९, भाग १ व २—ग्रियर्सन

९. मेमायर्स आफ सर जान मालकम, भाग १ व २

१०. राजपूताना गजेटियर, भाग २

११. दी ग्लोरी देट वाज गुर्जर देश, भाग ३—के० एम० मुन्शी

★